वर्ष २ अंक १४
विक्रम संवत् २०७६ कार्तिक
नवम्बर २०१९

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

नवम्बर २०१९

वर्ष–२ अंक–१४,
विक्रम संवत् २०७५
दयानान्दाब्द– १६५
कलि संवत् – ५११६
सृष्टि संवत् –१,६६,०८,५३,११६

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

समन्वय सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(६६६३६७०६४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
ए–११,त्यागी विहार, नांगलोई,
दिल्ली–११००४१
चलभाष– ८१७८७१०३३४

अनुक्रम

विषय

१ आर्यसमाज (सम्पादकीय)

२ इतिहासकारों की दृष्टि में वैदिक सभ्यता.....

३ समझो उसने कुछ किया नहीं (कविता)

४ Rise and Fall of Varnas

५ सर्वतन्त्र सिद्धान्त

६ महर्षि दयानन्द स्मारक भिनाय कोठी....

७ उत्तम संस्कार मनुष्य को सच्चे....

८ जो सर्वोत्तम हो उसे ग्रहण करें....

९ डायन (कहानी)

१० जन्नत (कहानी)

११ चरित्र : व्यक्ति, परिवार...

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

आर्य समाज

संसार में कुछ लोग ही होते हैं जो व्यक्तिगत अथवा संस्थागत रूप से जनहित या मानवता के हित में सोचते और कुछ करते हैं। ऐसे लोग जीवन में आपत्तियां ही मोल लेते हैं और अपना सुख चैन गंवाते हैं। इन्हें जीवन में दीनता, विपन्नता का वरण करना पड़ता है और विष घूंट पीकर या फांसी पर चढ़कर जान भी गंवानी पड़ती है। इन्हीं सहृदय, साहसी और वीर महान् आत्माओं के त्याग और बलिदान पर संस्कृ–तियां, समाज और मानवता सुरक्षित, जीवित और गतिशील रहते हैं। पाखंड, अंधविश्वास, अन्याय, अत्याचार, शोषण, प्रताड़न, छल, कपट आदि आसुरभाव मानवता को कब का निगल चुके होते, यदि बलिदानी परम्परा, संघर्ष और आंदोलन की प्रेरणा करने वाले दैवी भावों के प्रतिनिधि ये महापुरुष समय–समय पर न होते।

ईसा की 19 वीं शताब्दी में जन्मे महर्षि दयानंद सरस्वती और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज उक्त दैवी भावों का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं, संसार का उपकार करना जिनका मुख्य उद्देश्य रहा है। हम यहां उनकी उस सोच की किंचित् बानगी प्रस्तुत करते हैं जो उनके कार्य की आधारशिला है जिसके ऊपर वह एक स्वस्थ समाज रूपी भवन खड़ा करना चाहते थे।

1– दयानन्द का मनुष्य

मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की, चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी, चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महा बलवान और गुणवान भी हो, तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्य रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

(देखें–सत्यार्थ प्रकाश में स्वमन्तव्यामन्तव्य)

2– सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। **(आर्य समाज नियम 4)**

3– प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। **(आर्य समाज नियम 9)**

4– सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए। **(आर्य समाज नियम 5)**

5– अधर्म से चाहे चक्रवर्ती राज्य ही क्यों न सिद्ध होता हो तो भी सिद्ध न करे। **(संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण)**

6– सबके लिए आवश्यक और अनिवार्य शिक्षा– **इसमें राज नियम और जाति नियम होना चाहिए कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें, पाठशाला अवश्य भेज देवें। जो न भेजें वह दंडनीय हों।**

सबको तुल्य वस्त्र, खानपान, आसन दिए जावें, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की संतान हो, सबको तपस्वी होना चाहिए।

सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है। (सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास)

संक्षेप में ये हैं वे आधारशिलाएं जिनके ऊपर एक स्वस्थ समाज बनाकर खड़ा करना स्वामी दयानन्द का उद्देश्य था जिसके लिए उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की थी। इसका उद्देश्य बताते हुए उन्होंने लिखा–

"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।" (आर्य समाज नियम 6)

आर्य समाज ने लगभग 150 वर्ष पूरे कर लिए। यह किसी संगठन के लिए कोई कम महत्व की बात नहीं कि वह डेढ़ सदी का काल बीत जाने पर भी जीवित हो और गतिशील हो। गत 145 वर्षों में देश में होने वाले महत्वपूर्ण कार्यों में कोई भी ऐसा नहीं है जिसमें

किसी न किसी रूप में आर्य समाज का योगदान न रहा हो। आर्य समाज और उसके संस्थापक से प्रेरणा पाकर अनेक लोगों ने धर्म, संस्कृति और राष्ट्र की सेवा और रक्षा में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। चाहे वह श्यामजी कृष्ण वर्मा, अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, पंडित गेंदालाल दीक्षित, अशफाक उल्ला खां, भगत सिंह, रोशन सिंह, राजेंद्र लाहिड़ी, राजगुरु, सुखदेव, चंद्रशेखर आजाद आदि जैसे क्रान्तिवीर हों, चाहे शहीद पंडित लेखराम, श्रद्धानन्द व पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी जैसे धर्मवीर हों, चाहे देश के स्वाधीनता संग्राम में जूझने वाले भाई परमानंद और लाला लाजपत राय हों, चाहे हैदराबाद सत्याग्रह, हिंदी सत्याग्रह और गौ रक्षा आंदोलन के बलिदानी वीर हों, इस देश की बलिदान माला में आर्य समाज के ये और ऐसे अनेक हीरे, लाल और रत्न दूर से ही चमकते दिखाई पड़ेंगे। संसार में आर्य समाज का कोई शानी नहीं है। आर्य समाज का अब तक का इतिहास अत्यंत गौरवपूर्ण रहा है। धार्मिक क्षेत्र में आर्य समाज ने वह क्रान्ति की जिसकी कहीं कोई मिसाल नहीं मिलती। तलवार के भय और धन के लोभ से विधर्मी बनाए गए हजारों आर्य भाइयों को पुनः वैदिक धर्म में ले आने का श्रेय तो इसे प्राप्त ही है परन्तु विचार विनिमय, शास्त्रार्थ, प्रवचन और लेखन के द्वारा आर्य समाज ने अनेक विधर्मी, मूर्धन्य विद्वानों, मुल्ला, मौलवी और पादरियों को वैदिक धर्म की दीक्षा लेने पर विवश कर दिया जो किसी चमत्कार से कम नहीं है। विधर्मियों को उनके धर्म ग्रंथों के अनुवाद (तर्जुमे) बीसों बार बदलने पर विवश होना पड़ा। शास्त्रार्थ समर में आर्य विद्वानों ने शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिए और वे सदा के लिए पलायन कर गए। एतद्देशीय मत मतान्तरों के हजारों लोगों ने कण्ठियां तोड़, तिलक पोंछ और पाषाण मूर्तियों को पानी में फेंक कर सहर्ष वैदिक धर्म की दीक्षा ले ली। अनेक बौद्ध मत के और जैन मत के विद्वान् भी वैदिक धर्म में दीक्षित होकर आजीवन आर्य समाज आंदोलन के अंग बने रहे। **प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु विज्ञान मार्तण्ड वात्स्यायन ने तो दयानन्द पर बोध रात्रि नामक महाकाव्य ही लिख डाला।**

समाज सुधार के क्षेत्र में भी आर्य समाज एक कर्मयोगी संगठन रहा है। नारी उत्पीड़न के विरुद्ध विधवा विवाह, नारी निकेतन, अनाथ आश्रम खोलने आदि कार्यों के साथ आंदोलन के द्वारा संघर्ष करके भी नारियों को संरक्षण प्रदान किया। सर्वप्रथम स्त्री शिक्षा के लिए आवाज उठाने और उनके लिए कन्या विद्यालयों की स्थापना का श्रेय भी इसे ही जाता है। नारियों को शिक्षा का अधिकार और समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ। कन्याओं की हत्या, दहेज हत्या और सती प्रथा जैसी कुरीतियां समाप्त हुईं। जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था, छूत छात ऊंच–नीच, जात पांत के विरुद्ध संघर्ष करके अनेक शूद्र कहे जाने वाले लोगों के पुत्र पुत्रियों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बनाकर गुण–कर्म पर आधारित वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रारम्भ भी आर्य समाज ने ही किया। अनेक उच्च वर्ण के लोगों ने अपने पुत्र–पुत्रियों के विवाह शूद्र कुलोत्पन्न गुरुकुल के स्नातकों के साथ सहर्ष कर दिया। आज सैकड़ों की संख्या में शूद्र कुलोत्पन्न जन विद्वान् बन कर उपदेशक और पुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित हैं। आर्य समाज ने यह भी एक इतिहास रचा है जो किसी चमत्कार से कम नहीं है। यदि महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की यह बात पूरी कौम मान लेती तो आज यह अवर्ण सवर्ण का द्वन्द कदापि न होता। परन्तु गांधी जी ने हरिजन कौम पैदा करके आर्य समाज के कार्य को बहुत बड़ी क्षति पहुंचाई, यह क्षति इस कौम के लिए अपूरणीय ही रहेगी।

शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज ने बहुत बड़ी क्रान्ति की। वेदों को बहु देवतावाद और गडरिया गीतों की संज्ञा से मुक्त करा उन्हें एकेश्वरवाद का प्रथम प्रवर्तक और ईश्वर के वास्तविक स्वरूप के बोधक मानव मात्र के एकमात्र धर्म ग्रंथ और ईश्वरीय ज्ञान तथा विज्ञान के आकर के पद पर प्रतिष्ठित करवाया। मृत प्राय संस्कृत भाषा को पुनः जीवित करने हेतु अनेक गुरुकुल खोलकर जाति में शास्त्री, आचार्यों का ढेर लगा दिया। यही नहीं, संस्कृत भाषा को ब्राह्मण नाम धारियों की बपौती से मुक्त करा उसे सर्वजन सुलभ और सर्वजन ग्राह्म बना दिया। देश में ऐसे अनेक विद्यालय खोले जिनमें बिना किसी भेदभाव के सभी जातियों के बालकों को राष्ट्रवादी भावना से ओतप्रोत एकत्व और परस्पर प्रेम उत्पन्न करने वाली शिक्षा प्रदान की। शिक्षा के क्षेत्र

में आर्य समाज का योगदान इस देश में अब तक भी बेजोड़ है।

राष्ट्रोत्थान और प्रगतिशीलता का क्षेत्र भी आर्य समाज से अछूता नहीं रहा। बाल विवाह के विरुद्ध शारदा एक्ट १६३० लागू करवाना, Marriage Act 1937 पास करा कर अंतर्जातीय आर्य विवाहों का प्रचलन व प्रोत्साहन, मृत्युभोज और मृतक श्राद्ध आदि के विरुद्ध प्रचार करके समाज का बड़ा उपकार किया है। स्त्री शूद्रों को पुरोहितों, सामंतों आदि के शोषण से मुक्त कराने और उनके अधिकार वापस दिलवाने में आर्य समाज कभी पीछे नहीं रहा। अभी कुछ वर्ष पूर्व सती प्रथा के विरुद्ध दिवराला यात्रा और हरिजन मंदिर प्रवेश को लेकर नाथद्वारा यात्रा करने का श्रेय भी आर्य समाज को ही जाता है। गौरक्षा के क्षेत्र में भी आर्य समाज के प्रवर्तक ने ही आवाज उठाई। महर्षि दयानन्द ने सर्वप्रथम गौ कृषि आदि रक्षिणी सभा, बनाई तथा गौशालाये खुलवाई, जिनमे देश की प्रथम गौशाला राव श्री तुलाराम जी के सहयोग से रेवाड़ी हरियाणा में खोली गई। इसके पश्चात् स्वामी जी ने गोवध के विरुद्ध अंग्रेज सरकार से कानून बनवाने और गोवध को सदा के लिए बंद करवाने हेतु करोड़ों लोगों के हस्ताक्षरों से युक्त ज्ञापन ब्रिटिश सरकार को दिया था। इनके साथ ही ''गोकरुणानिधि'' पुस्तक लिखकर उसकी सहस्त्रों प्रतियां छपा कर जनसामान्य में बंटवाई और गौ के महत्व से सबको परिचित कराकर उसकी रक्षा व पालन की प्रेरणा प्रदान की।

कर्मकाण्ड के क्षेत्र में भी पुरोहितों व पण्डों के षडयंत्रों का भंडाफोड़ करके शोषण युक्त कर्मकाण्ड से जनसामान्य को मुक्ति दिलाई। मूर्तिपूजा और स्वर्ग नरक के भय युक्त पौराणिक कर्मकाण्ड के स्थान पर सदियों से उपेक्षित वैदिक कर्मकाण्ड की पुनः स्थापना की। जैनों और बौद्धों के आक्रमण से प्रताड़ित और लुप्तप्राय यज्ञ परम्परा को पुनः प्रचलित किया। यज्ञ परम्परा को पशु वध के पाप से निकाल कर यज्ञ और वैदिक कर्मकाण्ड का औचित्य बताया। आज हजारों घरों में प्रतिदिन वेद पाठ और यज्ञ हो रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि आर्य समाज का अतीत अत्यंत गौरवपूर्ण व प्रेरणाप्रद रहा है, हमने उसकी थोड़ी सी बानगी ही अतीत के झरोखों से प्रदर्शित की है। इतना कुछ करने के बाद भी आर्य समाज वह सब नहीं कर सका जो उसे करना आवश्यक था। वास्तव में आर्य समाज एक यथार्थ समाज के रूप में कभी प्रतिष्ठित नहीं हुआ, वह एक सहकारी संस्था से अधिक कुछ नहीं रहा। वह वैदिक सिद्धांतों को व्यावहारिक धरातल पर नहीं उतार पाया।

समाज का अर्थ है—एक कर्मकाण्ड से जुड़ा पारस्परिक हित चिंता से युक्त संगठन। आर्य समाज का अर्थ था वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित वैदिक कर्मकाण्ड से जुड़ा एक दूसरे की हित चिंता और हित साधन में तत्पर आर्यों का संगठन। आर्य समाज के प्रवर्तक का यही स्वप्न था, उन्होंने यही आशा लगाई थी जिसे हम पूर्ण नहीं कर सके। महर्षि दयानन्द ने जन्म से मृत्यु पर्यंत का सम्पूर्ण कर्मकाण्ड वेद अनुसार हमें प्रदान किया था परन्तु हम उसे प्रतिष्ठित नहीं कर सके। वह आज तक जोर जबरदस्ती से सर्वत्र थोपा जाता है। वर और कन्या में से वर पक्ष यदि आर्य समाजी है तो वह कन्या पक्ष पर इसे थोपता है। यदि कन्या पक्ष आर्य समाजी है तो वर पक्ष उसकी छाती पर चढ़कर वह सब कुछ कराता है जो वह नहीं चाहता। पता नहीं गुण कर्मानुसार वर्णों का निर्धारण करके संतान परिवर्तन और योग्यता अनुसार अधिकार प्रदान करने का कार्य कब होगा, कौन करेगा? कहा नहीं जा सकता।

जो वंचित तबके से आने वाले आर्य विद्वान् हैं वह घर से बाहर आर्य समाज के मंच पर पंडित जी कहे जाते हैं परन्तु अपने घर गांव में वहीं रहते हैं जो उनकी जन्मजाति है। अपने बच्चों को वे संस्कारित करते हैं, संध्या हवन सिखाते हैं, मांस मदिरा आदि से दूर रखते हैं, इतना सब होने पर भी जब विवाह का समय आता है तो उन्हें विवश होकर अपनी संस्कारित संतान कूड़े कचरे में हीं फेंकनी पड़ती है। यह एक विडम्बना ही है। आर्य परिवारों के वैवाहिक सम्बन्ध जब तक आर्य परिवारों में ही नहीं होंगे तब तक वास्तविक आर्य समाज नहीं बन सकता और संस्कार विधि को भी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होगी।

— वेदप्रिय शास्त्री

क्रमशः

इतिहासकारों की दृष्टि में वैदिक सभ्यता और आर्यों की उत्पत्ति

– अखिलेश आर्येन्दु

पिछले अंक में भारतीय इतिहास लेखन और इतिहासकारों द्वारा लिखे इतिहास के मानक पर चर्चा करते हुए हमने पाया कि अंग्रेजों के आने के बाद जो भारतीय इतिहास लिखा गया उसके लिखने वाले विदेशी अंग्रेज थे या वे भारतीय वामपंथी इतिहास लेखक थे जो अंग्रेजों द्वारा लिखे इतिहास के निर्धारित पैमाने को 'बाबा वाक्यम् प्रमाणं'मानकर अपनाया और उसे ही इतिहास लेखन की कसौटी माना। ध्यान रहे, विदेशी अंग्रेज इतिहासकारों ने इतिहास लिखते हुए भारतीय साहित्य, समाज, संस्कृति, भाषा, धर्म, वैदिक वांगमय और उत्थान–पतन को अपने शासन को स्थायित्व देने के उद्देश्य और ईसाई संस्कृति, मजहब, शिक्षा, भाषा, समाज व धर्म ग्रंथ को श्रेष्ठ साबित करने की दृष्टि को केन्द्र में रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में अपने इतिहास को पढ़ने वाले भारतीय छात्र–छात्राएं, प्रतियोगी छात्र–छात्राएं, शोधार्थी एंव इतिहास में रुचि रखने वाले आम भारतीय यह समझने लगे कि भारत हमेशा से पिछड़ा, गंवार, नकलची, हारा हुआ, अशिक्षित और यहाँ के लोग लड़ाई–झगड़ा करने वाले रहे हैं। वेद–शास्त्र, यहाँ के रचित साहित्य, धर्म ग्रंथ–जिसमें वेद–दर्शन प्रमुख हैं, यहाँ की शिक्षा प्रणाली और पद्धति, समाज और शासन व्यवस्थाएं अत्यंत पिछडी हुईं और अवैज्ञानिक रहे हैं। अंग्रेजों के आने के पूर्व भारतीय खाना–बदोश जैसे थे। इतना ही नहीं, वेदों को गड़रियों का गीत साबित करने के लिए उन्होंने बाईबिल से तुलना करके कमतर सिद्ध करने की कोशिश की। इसी क्रम में द्रविण और आक्रमणकारी आर्यों के मध्य युद्ध जैसी घटनाएं विदेशी इतिहासकारों की कल्पना की हिस्सा बनीं। इसी तरह आर्य बाहर से आए और यहाँ के मूल निवासी तथाकथित द्रविणों को युद्ध में हराकर यहाँ रहने लगे जैसी बातें भी अंग्रेजों के षड्यंत्र और कल्पना के प्रमुख अंग बनें। जब कि इतिहास में कल्पना का कोई स्थान नहीं है। इसलिए भारतीय इतिहास को फिर से लिखने की आवश्यकता है जिससे वास्तविक इतिहास से भारतीय जनमानस परिचित हो सकें। पिछले अंक में इतिहासकारों के इतिहास लिखने के पैमाने और निष्पक्ष इतिहास लेखन करने वाले इतिहासकारों के इतिहास लेखन के पैमाने को सूक्ष्म ढंग से रखने का प्रयास किया था। इस अंक में आगे पढ़िए।

– समन्वय सम्पादक

काल विभाजन और उनके आधार –

भारतीय इतिहास की पाठ्य पुस्तकों में वैदिक सभ्यता को आर्यों की उत्पत्ति, उनकी भौगोलिक पृष्ठभूमि, पुरातत्त्व और वैदिक सभ्यता, प्रारम्भिक आर्य समाज के साथ वैदिक काल को ऋग्वैदिक काल, पूर्व वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल जैसे विभाजनों के माध्यम से यह प्रमाणित करने का कुप्रयास किया गया है कि वैदिक सभ्यता का काल अधिक से अधिक 12000 वर्षों के पूर्व का नहीं है। इसके प्रमाण के तौर पर इतिहास लेखक पुरातत्त्व खोज में मिली वस्तुएं, अनुमान, कल्पना आदि की सहायता लेते हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि विदेशी, वामपंथी, पोंगापंथी या परम्परावादी इतिहास लेखक अंग्रेजों द्वारा निर्धारित मानक, कल्पना, अनुमान का बार–बार सहारा लेता दिखाई देता है। इन्हें न वैदिक वांगमय का कोई ज्ञान है और न भाषा विज्ञान की ही इन्हें समझ है। भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़ाने वाले प्रवक्ता आदि भी उसी अंधपरम्परा पर आगे बढ़ते दिखाई देते हैं। इनकी लिखी इतिहास की पुस्तकें किसी काम की नहीं, क्योंकि ये सब वेद में उसी तरह इतिहास खोजते दिखाई देते हैं जैसे विदेशी पादरी और अंग्रेज इतिहासकार। मैंने पहले बताया है कि गम्भीर अध्ययन, निष्पक्षता, सत्यता, वास्तविकता, प्रमाण में निष्पक्षता और अनुमान में निष्पक्षता विदेशी इतिहासकार में दिखाई नहीं देती है, कुछ अपवादों को छोड़कर। आज भी विश्वविद्यालयों में जो इतिहास पढाया जाता है, जिसमें अंग्रेजों द्वारा या अंग्रेज इतिहासकारों द्वारा निर्धारित मानक या पैमाने को ही प्रमुखता दी गई होती

है को ही पढ़कर नई पीढ़ी भारत का तथाकथित इतिहास की जानकारी कर रही है। ऐसे में भारत का वास्तविक इतिहास कैसे समझा जा सकता है?

इतिहास में ऋग्वैदिक काल, पूर्व वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल जैसे विभाजन विदेशी इतिहासकारों की सरारत और कल्पना का प्रमुख अंग है। सबसे पहले हमें इस विभाजन के पीछे छिपे विदेशी इतिहासकारों की मंशा, उद्देश्य आदि को समझ लेना चाहिए। फिर समझ में आ जाएगा कि किस तरह विदेशी इतिहासकारों ने चालाकी, सरारत, षड्यन्त्र और कल्पना के सहारे भारतीय इतिहास का काल विभाजन किया। आर्यों की उत्पत्ति इतिहास की पुस्तकों में एक महत्वपूर्ण अध्याय है। इसमें अनुमान के आधार पर ही सब कुछ निर्धारित किया गया है। तर्क, वैज्ञानिकता, वास्तविकता और साक्ष्य किसी भी इतिहासकार के पास नहीं है। अब विचार करने की बात यह है कि जब सब कुछ अनुमान और कल्पना के आधार पर ही आधारित है तो इसे इतिहास कैसे कहा गया? प्रश्न यह भी है, इतिहास शब्द और इतिहास के नियम–सिद्धान्त से इतर इतिहास को इतिहास कैसे कहा जा सकता है? इतिहास का अर्थ है इति-ह–आस = ठीक ऐसा ही। और पुराण का अर्थ पुरा–वृत्रम् = जो पहले हुआ हो। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दोनों शब्दों–इतिहास व पुराण से अतीत की घटनाओं के संकलन को इतिहास या पुराण संज्ञा ठहरती है।

अमरकोश में 'पुरावृत्त' लिखा है। इस प्रकार दोनों शब्दों से अतीत की घटनाओं के संकलन की इतिहास या पुराण संज्ञा ठहरती है। स्पष्ट है कल्पना, अनुमान से इतिहास का बोध हो ही नहीं सकता। इतिहास के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारतीयों (जिन्होंने इतिहास लिखते समय इतिहास के पैमानों और नियमों का पालन किया है) और विदेशियों (विशेषकर मेकाले के उद्देश्यों को पूरा करने वाले) इतिहासकारों के दृष्टिकोण, पैमाने और चिंतन की धारा में अमूलचूल अन्तर है। इसलिए इतिहास लेखन में भी अन्तर है। भारत के लोगों की इतिहास –

दृष्टि धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्। पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।।''

अर्थात् सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित लक्षणयुक्त 'पुराण' कहाते हैं। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य, जनक, गार्गी, मैत्रेयी आदि कथाओं का नाम 'गाथा' है। राजाओं की वंशावलियाँ तैयार करने वाले 'पुराविद' कहाते थे। विदेशी और वामपंथी इतिहासकारों ने इतिहास लिखते समय भारतीय इतिहास के स्रोत माने जाने वाले ग्रंथों महाभारत, रामायण, पुराण, कलियुग–राजवृत्तान्त, नेपाल–राजवंशावलियाँ, चम्पूग्रन्थ और नाटकों से सहायता लेने के स्थान पर पुरातत्त्व में मिले शिलालेखों, सिक्कों, खिलौनों, मूर्तियों, बर्तनों और परदेशी–प्रवास–वर्णनों का प्रयोग इतिहास लेखन में बहुतायत में किया और अनुमान, कल्पना और अतुकान्त संदर्भों का सहारा अधिक लिया। जबकि अंग्रेज अपना इतिहास भी केवल इनके सहारे से नहीं लिख सकते थे। भारतीय इतिहास लेखन के कार्य को इतिहास के नाम पर मेकाले और ईसाई पादरियों के भारत विरोधी उद्देश्य की पूर्ति को ही आगे बढ़ाया गया। चिन्ता की बात यह है कि स्वाधीनता के उपरान्त केंद्र की सरकारें विदेशी विद्वानों और पादरियों के उद्देश्य की पूर्ति के काम को ही आगे बढ़ाने में सहयोगी की भूमिका में रहीं। भारत के प्रसिद्ध पुरातत्वविद् महामहोपाध्याय डॉ हर प्रसाद शास्त्री जी ने जर्नल ऑफ बिहार ओरियण्टल स्टटीज नामक ग्रंथ के पृष्ठ 325–26 पर लिखा है कि–

''उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में मेरे यूरोपीय मित्र मुझसे कहते थे कि भारत के इतिहास के लिए रामायण, महाभारत तथा पुराणों को हाथ मत लगाइए। उनका लक्ष्य था केवल सिक्के, शिलालेख, परदेशियों के प्रवास–वर्णन, पुरातत्त्वीय शिल्प इत्यादि से इतिहास तथा कालक्रम निश्चित करना। परन्तु अब श्रीमान जायसवाल ने पुराणों से ही कालक्रम ढूँढ निकाला है। पार्जिटर का अन्तिम कार्य पुराणों का महत्त्व प्रकट करता है। तात्पर्य यह है कि हमारे पुराण जैसे साधन और परम्पराएँ जो पहले अविश्वसनीय मान ली गईं थीं,उनका महत्त्व पुन प्रतिष्ठित हो गया है।''

विदेशी इतिहासकारों और वामपंथी इतिहासकारों के इतिहास के सम्बन्ध में भारत विरोधी कार्यों को कुछ विदेशी इतिहासकारों ने समझा और उसे सार्वजनिक किया। जिसमें ऑरेल स्टीन(Aurel Stein) , फ्रेंच वैयाकरण बॉप, फ्रैंच विद्वान् लुई चैकालियट, सर विलियम जोन्स, श्लीगल आदि का नाम प्रमुख है। मैक्समूलर महाशय ने भारत के इतिहास को किस मानसिक दशा और अत्यन्त स्वार्थ के वशीभूत होकर

लिखा, यदि इसे भारत के आम आदमी और विश्व के इतिहासकारों को मालुम हो जाए तो भारतीय इतिहास की कहानी के रहस्य से परदा उठने में देर नहीं लगेगी। स्पष्ट है आम आदमी तो यही जानता है कि आर्य बाहर से आए और यहाँ के मूल निवासी द्रविणों और कोलभीलों को परास्तकर यहीं बस गए। मेरा इस सम्बन्ध में भारत और विश्व के अन्य देशों के उन लोगों से कहना है जो भारतीय इतिहास को सत्य और प्रमाण के रूप में जानना–समझना चाहते हैं वे भारतीय इतिहास की कहानी और इतिहास को पढ़ते समय अपनी बुद्धि की आँख, कान और मन को खुला रखें। इससे भारतीय इतिहास को ही नहीं बल्कि यहाँ की संस्कृति, सभ्यता, धर्म, भाषा, अध्यात्म और समाज को ठीक–ठीक समझने में सुविधा होगी।

मैक्समूलर का दृष्टिकोण

वेदों के देशी–विदेशी काल विभाजन के पहले विदेशी विद्वानों के संस्कृत भाषा–प्रेम के सम्बन्ध मे जान लेना आवश्यक है। इससे विदेशी विद्वानों के दृष्टिकोण के सम्बन्ध में जानकारी हो सकेगी। मेकाले की दासता स्वीकार करने के बाद मैक्समूलर ने भारतीय इतिहास के विरुद्ध षड्यन्त्र में अपनी आत्मा का हनन कर ऐसा दुष्कृत्य करना प्रारम्भ किया जो किसी विश्व प्रसिद्ध विद्वान् के लिए कभी स्वीकार्य नहीं होगा। लेकिन मैक्समूलर ईसाइयत के फंदे में इस कदर फंस चुका था कि उसने भारत को हर तरह से नीचा दिखाने के लिए अपनी सारी प्रतिभा और शक्ति लगा दी। इस बात का प्रमाण 28 दिसम्बर 1855 को मेकाले से भेंट होने के पश्चात् भारी मन से इन शब्दों में व्यक्त की–''मैं पहले की अपेक्षा अधिक दुखी, किन्तु बुद्धिमान् बनकर ऑक्सफ़ोर्ड लौटा।'' इसका मतलब यह कि मैक्समूलर जैसे विद्वान् को मेकाले जैसे राजनीतिज्ञ के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा और बुद्धिमान् इस लिए कि अब उसे संसार के सुखों का उपभोग करते हुए सुखमय जीवन व्यतीत करने के समुचित साधन मिल गए थे।

आमतौर पर विद्वानों का जीवन अभावों में ही गुजरता है। मैक्समूलर उस समय अभावों में गुजर रहा था। मेकाले की ओर से उसे समुचित सुख के साधन उपलब्ध कराए जाने की व्यवस्था से उसने भारत की गौरव–गरिमा, ऐश्वर्य, धर्म, भाषा, ज्ञान–सम्पदा, इतिहास और अध्यात्म–संस्कृति को नाश करने के लिए अपनी दुधारी तलवार लेकर भारत के सर्वनाश के लिए पिल पड़ा। जो मैक्समूलर के षड्यन्त्रों, सरारतों और कार्यों को जानते होंगे वे यह भी जानते होंगे कि उसने किस तरह एक–एककर भारत का सर्वनाश करने के लिए कैसी–कैसी चालें चलीं। मैक्समूलर की ही करामात थी कि भारत के इतिहास, संस्कृति, धर्म, साहित्य, राजनीति, गौरवशाली परम्पराएं और ज्ञान–विज्ञान (वेद, वैदिक वांगमय और संस्कृत के अन्य कार्य) के सम्बन्ध में ऐसी बेसिर–पैर और हीन भावना पैदा करने वाली बातें पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित हो गईं जो भारतीय संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, ज्ञान–विज्ञान, धर्म, अध्यात्म और दर्शन के विपरीत थीं। स्पष्ट है मेकाले यही चाहता था। इस कार्य में उसका साथ मैकडानल, कीथ, बूल्हर, हॉग, विल्सन, थ्योडोर व जैकाबी जैसे विदेशी ईसाई विद्वानों ने दिया।

विदेशी भाषाविदों, इतिहासकारों और पादरियों ने मिलकर सबसे पहले संस्कृत भाषा और ग्रंथों पर आक्रमण किया। और हमारी गुलाम मानसिकता इस कदर विकृत हो चुकी थी कि हमने 'आंग्लवाक्यं प्रमाणम्' को अपनी मोहर लगा दी। मैक्समूलर ने संस्कृत व्याकरण के सबसे प्राचीन ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' और पाणिनी के सम्बन्ध में कहा कि पाणिनी के समय तक तो भारतीय लोग लिखना–पढ़ना भी नहीं जानते थे। उसका पूर्वाग्रह संस्कृत के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि वेद, उपनिषद्, सूत्रग्रंथों और अन्य संस्कृत के ग्रंथों के लिए भी है। मैक्समूलर का वैदिक वांगमय और संस्कृत के ग्रंथों को लेकर पूर्वाग्रह का कारण साधारण नहीं था बल्कि इससे पूरी आर्य सभ्यता, संस्कृति, भाषा, दर्शन, धर्म और अध्यात्म जुड़ा हुआ है। कोई विश्व प्रसिद्ध विद्वान् कोई बात किसी ग्रंथ, संस्कृति, भाषा, धर्म, साहित्य और दर्शन के सम्बन्ध में कहता है तो उसे सामान्य बात के तौर पर नहीं माना जा सकता। इस लिए मैक्समूलर के पूर्वाग्रह को भी सामान्य नहीं माना जा सकता है। विचारणीय बात यह है कि जो वैदिक सभ्यता इतनी ऊँचाई पर पहुँची हुई थी, इस सभ्यता से जुड़ा समाज लेखन या व्याकरण से अपरिचित रहे, सोचा भी नहीं जा सकता। प्रारम्भ में मैक्समूलर का दुराग्रह इस कदर था कि वह सम्पूर्ण वैदिक वांगमय, व्याकरण, दर्शन, भाषा और संस्कृति को अत्यन्त पिछड़ी हुई और निरक्षरों की कहता है। उसके पीछे उसके तर्क

अत्यन्त भोथरे और बेकार के हैं। विचारणीय बात यह है कि आज जिन वेदों को ईसाई बहुल देश अमेरिका के भाषाविद् और भाषा वैज्ञानिक संसार की सबसे पुरानी और वैज्ञानिक भाषा कह रहे हैं वह मैक्समूलर की दृष्टि में कोई सुगठित और सौष्ठव युक्त नहीं है। लेकिन जब हम समग्रता से स्वाध्याय और गवेषणा करते हैं तो पाते हैं कि ईसाई मत (जिसे भारतीय राजनेता धर्म कहते हैं) और ईसाई जाति को विश्व को सबसे सभ्य जाति और विश्व का सबसे श्रेष्ठ धर्म सिद्ध करने के लिए मैक्समूलर ने इस कदर दुराग्रह पाल लिया था कि उसे बाईबिल और ईसाई से बड़ा और उन्नति का न तो जाति धरती पर दिखाई दे रही थी और न तो कोई मजहब या धर्म की पुस्तक ही। ज्ञातव्य है मैक्समूलर के समय में ही कुछ ऐसे चिन्तक, विद्वान्, गवेषक, भाषा वैज्ञानिक, व्याकरणाचार्य और दार्शनिक हुए हैं जिन्होंने मैक्समूलर के दुराग्रह का खुलकर विरोध और प्रतिवाद किया। जिसमें बिल ड्यूरेन्ड, फ्रेन्च विद्वान् लुई जैकालियट, बिलियम जोन्स, हैनरी टामस, कोलब्रुक, श्लैगर, शोपनहार और हमबोल्ट प्रमुख हैं। इन विद्वानों ने वैदिक वांगमय को पश्चिमी दुनिया के लोगों तक पहुँचाया तो वहाँ का विद्वत् समाज आश्चर्यचकित रह गया और बौखला गया। हम उन सभी पश्चिमी विद्वानों के ऋणी हैं जिन्होंने वेदों को विश्व पटल पर लाकर सबके सामने रख दिया। इस सन्दर्भ में यह भी समझते चलना चाहिए कि मैक्समूलर पश्चिमी उन विद्वानों के तर्क, गवेषणा, स्वाध्याय, लेखन और विचारों का हमेशा खिल्ली उड़ाता है जो वैदिक वांगमय और वैदिक संस्कृति के मुक्तकंठ से प्रशंसक रहे हैं।

पाठक मित्रो, प्रस्तुत लेख को खुले मन और विचार से पढ़े। यदि कहीं आप को कोई जिज्ञासा या उत्कंठा हो तो मेरे चलभाष पर फोन या ई–मेल से सम्पर्क अवश्य करें। मैं हर सम्भव समाधान का प्रयास करूंगा।

****

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनुबलम् ।
(अथर्व ९.४.२०)

तुम्हारे घरों में गायें हों, संतान हो और शारीरिक बल हो।

समझो उसने कुछ किया नहीं

स्वाभिमान सम्मान साथ ले, जो नर जग में जिया नहीं।
समझो उसने कुछ किया नहीं।।

स्वीकार करे दासत्व सदा, कायरता का परिचय देकर।
पशुओं की भांति मूढ जीवन, जीता हो पाश बद्ध होकर।
निज उदर भरण रत रहे सदा, परहित में क्षण भर जिया नहीं।।
समझो उसने कुछ किया नहीं।।

राहों में बिखरे शूलों से, तन मन दोनों ही कंपित हैं।
भय की चादर में लिपटा जो, बोलो यह कैसा जीवन है।
पाकर के मानव जन्म अहो, सुख शांति सुधा रस पिया नहीं।।
समझो उसने कुछ किया नहीं।।

दिन बीते दुख के दरिया में, रातें बीती बस अश्रु बहा।
नित नए अभावों से जूझें, जीने का आश्रय नहीं रहा।
उन दीनों की दुर्दशा देख, करुणाकर कुछ भी दिया नहीं।।
समझो उसने कुछ किया नहीं।।

सुख संपत्ति संग्रह करने में, जो लुटा रहा जीवन धन को।
व्यसनों के विषम भंवर में फंस, नित बढ़ा रहा विषयानल को।
बनकर जो इंद्रिय दास रहे, कुछ यत्न आत्म हित किया नहीं।
समझो उसने कुछ किया नहीं।।

– वेद कुमार दीक्षित
देवास (म.प्र.)

RISE AND FALL OF VARNAS

– Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

The Vedic Culture has been existing for about 197 crore years. The system of four varnas is as old as the culture is. Proximate to the Mahabharata, the culture began to decay. At present it is difficult to explore as to what was the first step towards decay. But certainly it must have been from the Brahmins. For all the three varnas put together, were unable to down the Brahmins under the original constitution of Varna System.

It can be assumed and agreed upon that the first point of decay was the lowering in the Vedic Wisdom, of which the Brahmins were the custodians. The attainment and maintenance of Vedic Wisdom require a high degree of knowledge & austerity, the two of the greatest human qualities. Instead of containing the qualities, the Brahmins would have started to take the things in a casual manner.

Rishi Dayanand says that the Brahmins and the Kshatriyas control each other. It means that a learned Brahmin can raise finger against the wrong-doing king. He would not bow before a hundred kings. But when he vanishes to be learned, he vanishes to be strong, and becomes weak. A hundred weak Brahmins cannot face a strong king. In a cyclic manner the Brahmins and the Kshatriyas weakened each other, and subsequently all varnas and entire culture.

The weak Brahmins further committed three sins. First, they made the varna-system hereditary. They did so to enjoy their top status even without knowledge and austerity. Secondly, they mis-interpreted the Vedic hymns.

For instance, they explained the mantra given above as God gave birth to Brahmins out of His mouth, to Kshatriyas out of His limbs, to Vaishyas out of His thighs and to Shudras out of His feet.

The real meaning of the mantra is that the Brahmins are like the society's mouth, or the men of knowledge are the highest, the Kshatriyas are like its limbs, or they are the strength of the society, the Vaishyas are thigh-like or its movement, and the Shudras are like feet or its base. They mis-interpreted the mantras because all people have faith in the Vedas and would therefore sacrifice anything for them.

Thirdly, they suppressed the fourth varna. Their discrimination against the Shudras became so high that they declared them as untouchable. The

fourth-varna-people would live out of the village and would tie a broom behind them so as to rub of the signs of their feet while walking. The atrocities committed on the Shudras were unbearable and intolerable. Nevertheless they remained so good that they did not divorce the religion.

Once the decay started, it did not stop. It continued for centuries and still continues. Unfortunately the continuity was not stopped from further decay. Instead, many personalities, otherwise great, accelerated the decay itself. The two under-currents, not to stop the decay, and to accelerate the decay continued till Dayanand came to the scene. Dayanand made attempts, stronger than all people in 25 centuries combindly did. But his successors could not do much because of the Independence Priority and then Reservation Quota.

Under the Vedic System, all learned persons including Dr. B.R. Ambedkar are Brahmins. Once India gained freedom from foreign rule, thousands of men and women from weaker sections have become professors, doctors, scientists, and the like. According to the Vedic varna system, they are Brahmins, and for the time being can be called 'Arya Brahmins'.

Before the Vedic scholars could take a step to integrate the society, the Indian Government reserved a quota in legislative assemblies and government services for them, on caste basis. Thus they began to gain from their heredity. This way the negative heredity has become the positive heredity. But one should remember that heredity is never positive in social and cultural matters.

Having achieved both knowledge and money, the 'Arya Brahmins' have taken a turn to retaliate. They did not retaliate when they were Shudras. They have retaliated when they are 'really' Brahmins (men of knowledge). When pride was with the traditional Brahmins, they created the problem. Now pride is with the Arya Brahmins and they have further worsened it. 0 pride! get out and free our society from disintegration!!

Questions have been raised against Manusmriti that it discriminates between caste and caste. In fact Manusmriti contains 2685 verses out of which 1183 i.e. 44% are original and 1502 i.e. 56% are mixed into them later on. The original 1183 do not discriminate between any ones and for 1502 Manu cannot be held responsible.

The varna system had a fall due to the traditional Brahmins. Some reformers tried to make 'one' society in place of the 'four' varnas, later transformed into four castes. But however the society today has 4000 castes and sub-castes. Since the four varnas are natural definitions based on the human qualities of knowledge, power, money and labour, one cannot make them three or less in any country of wisdom.

Since the fall was due to Brahmins, now the required rise can also be due to Brahmins. So all the Brahmins, 'Arya' and traditional, should make their contribution to actualise the golden 'Varna Vyavastha' of the golden 'Vedic Culture'. May God inspire the Indians to revive the varna system instead of the present caste system. Let us hope for this golden revival, and do our best on social and political lines.

मुहूर्तमपि जीवेच्च नरः शुक्लेन कर्मणा।
न कल्पमपि कष्टेनलोकद्वयविरोधिना।।

भावार्थः- अच्छे कर्मों को करते हुए व्यक्ति एक मुहूर्त, एक क्षण भी जीवित रहे तो अच्छा है सिवाय इसके की व्यक्ति दीर्घ जीवन की कामना करें और दोनों लोकों को बिगाड़ने वाले और पाप युक्त कार्य करे। ऐसे व्यक्ति का कल्पभर जीना भी व्यर्थ है। व्यक्ति को चाहिए कि सदा मृत्यु का स्मरण करते हुए श्रेष्ठ कार्य करे जैसे - परहित, दान, तप, परोपकार, मधुर भाषण आदि। ऐसा न सोचें कि मेरी मृत्यु अभी दूर है, अभी बहुत जीना है। यही सोचकर कुकर्मों में लीन रहे और अपने लोक परलोक दोनों ही बिगाड़ ले। ऐसा व्यक्ति जीवित नही माना जाता।

- चाणक्य नीति (अध्याय १३-१)

सर्वतन्त्र सिद्धान्त

• विश्व में विभिन्न मतावलम्बियों की संख्या प्रतिशत निम्नवत् है- ईसाई ३१.५, मुस्लिम २३.२, हिन्दू १५, बौद्ध ७.१, अन्य ६.९, नास्तिक १६.३.

• सर्वतन्त्र सिद्धान्त वह सार्वजनिक धर्म है जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं, और मानेंगे भी। इसीलिए उसको सनातन और नित्यधर्म कहते हैं।

• सर्वतन्त्र सिद्धान्त के सर्वाधिक निकट जो संस्था है, वह **आर्यसमाज** है, अर्थात् वास्तविक वैदिक धर्म।

तीन निवेदनः-

१. संसार में ईश्वर को माना जाता है। ब्रह्माण्ड की ऐसी सूक्ष्म, जटिल, विविध और विस्तृत व्यवस्था ईश्वर के अतिरिक्त किसी के द्वारा सम्भव नहीं; न स्वयमेव, न सर्वमानवसमूह द्वारा। जो पढ़े-लिखे लोग ईश्वर को नहीं मानते, वह उनकी विद्या की अधिकता का नहीं अपितु न्यूनता का द्योतक है। आर्यसमाज ईश्वर को मानता है।

२. संसार में जीव को माना जाता है। जो लोग जीव को नहीं मानते, वे हास्य के पात्र हैं। देखिए, जीव ही जीव को नहीं मान रहा! आर्यसमाज जीव को मानता है।

३. संसार में प्रकृति अर्थात् मूल जड़ तत्त्व को माना जाता है। वायु से प्राण ठहरते हैं; जल से प्यास और भोजन से भूख शान्त होती है; अग्नि में जलकर, तलवार से कटकर और विष को खाकर लोग मरते हैं; दवा से रोग मिटता और स्वास्थ्य मिलता है। ये सब जड़ पदार्थ हैं। आर्यसमाज मूल जड़ तत्त्व की सत्ता मानता है।

- आचार्य रूपचन्द्र 'दीपक'

महर्षि दयानन्द स्मारक भिनाय कोठी– एक संक्षिप्त परिचय

– डॉ. गोपाल बाहेती

आर्य समाज के इतिहास के कुछ पन्नों को पलटने की कभी फुरसत मिले तो, महर्षि दयानंद से सम्बन्धित पृष्ठों को पढ़िए जरूर। इस लिए न पढ़िए कि मैंने पढ़ने के लिए कहा है, बल्कि इस लिए पढ़िए क्योंकि इससे मृत्यु से सम्बन्धित तमाम अनसुलझे प्रश्नों का समाधान हो जाता है। मेरी इस बात से एक सहज प्रश्न उठता है कि ऐसे वे कौन से प्रश्न हैं जिन्हें महर्षि देव दयानंद के जीवन इतिहास पढ़ने मात्र से समाधान हो जाते हैं। उन प्रश्नों में एक प्रश्न यह है कि क्या वास्तव में मृत्यु इतनी दुखदायी, रहस्यमय और भयावह है कि आदमी भयभीत हो जाता है? इसी तरह मृत्यु के समय मानव की सुधबुध समाप्त हो जाती, वह परेशान हो जाता है कि मृत्यु के उपरान्त उसका क्या होगा? और क्या मृत्यु पर विजय प्राप्त किया जा सकता है? एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि साधारण लोगों की मृत्यु और विशेष लोगों की मृत्यु में अंतर है। गौतम बुद्ध ने मानव शरीर की विभिन्न अवस्थाओं और एक व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसे जलाने के लिए ले जाते समय जब देखा था, जिज्ञासा हुई थी। और उस जिज्ञासा ने उनको गृहस्थ से विरक्ति हो गई। लेकिन, विश्व इतिहास में महर्षि दयानंद का शरीर त्यागना और एक नास्तिक का परम आस्तिक बनना, यह विश्व इतिहास में अपने तरह की अकेली घटना है। और उस घटना की साक्ष्य बनी भिनाय कोठी। आज जब हम महर्षि देव दयानंद के 59 वर्षीय जीवन का अवलोकन करते हैं तो भिनाय कोठी हमारे मन–मस्तिष्क में एक प्रेरणा और इतिहास के रूप में सामने दिखती है। लेकिन दुर्भाग्य कहें या समय का चक्र। एक विश्व विख्यात इतिहास पुरुष के उस प्रेरणा स्थल की सुधि न तो कभी केन्द्र सरकार ने ली और न तो राज्य सरकार ने। कितनी शर्म और बिडम्बना की बात है कि मुसलिम की दरगाह को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठा सरकारों की ओर से मिल रही है, लेकिन विश्व मानवता और ज्ञान के ज्योति पुरुष के महाप्रयाण स्थल को राज्य स्तर पर भी प्रतिष्ठा नहीं दी गई। प्रस्तुत लेख के लेखक डा. गोपाल बाहेती जी जो महर्षि दयानंद स्मारक न्यास के कार्यकारी प्रधान हैं ने महर्षि दयानंद के स्मारक स्थल का संक्षिप्त परिचय दिया है। यह लेख इस लिए भी उपयोगी है कि महर्षि दयानंद के अंतिम समय की झलक का परिचय इससे मिल जाती है। और उन लोगों के लिए भी उपयोगी है जो चाहते हैं, इस स्मारक के लिए अपना योगदान देने में वे हर्ष का अनुभव करेंगे।

भिनाय कोठी का वह ऐतिहासिक दृश्य

१८८३ की दीपावली की काली रात ने भारत के क्षितिज से एक सूर्य छीन लिया और देश को अंधेरे में धकेल दिया। भारत से वेद, धर्म, संस्कृति, साहित्य और समाज को दिशा देने वाला एक युगांतरकारी युग का अंत हो गया, इस दुःख से दुखी भारतीय लोग दीपावली को कोस रहे थे कि उसने एक ऐसा देवता छीन लिया जिसने हर ह्दय में ज्ञान, धर्म, संस्कृति, शिक्षा, मानवता और सुख–शांति के अहिर्निश जलने वाले दीप जलाने का शुभसंकल्प किया था। संतोष एक था– **एक दीपक बुझ गया, लाखों दीपों को जलाकर।** अब आइए कुछ जरूरी बातों पर दृष्टि डालें। स्वामी दयानन्द को किस प्रकार जोधपुर में विष दिया गया, किस प्रकार इलाज में लापरवाही हुई, यह शोध व इतिहास का हिस्सा है और स्वामीजी रुग्ण अवस्था में माउण्ट आबू होते हुए अजमेर पहुंचे तथा अजमेर में जयपुर रोड स्थित भिनाय के राजा की कोठी में विश्राम किया इसकी जानकारी कम लोगों को है। स्वामीजी १८८३ की २६ अक्टूबर को अजमेर आए और ३० अक्टूबर की शाम ६ बजे प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो कह अपने प्राण त्यागे। शंकर दिया बुझाय दिवाली को देह का, केवल्य के विशाल बदन में समा गया।

स्वामीजी का हँसते हँसते मृत्यु से आलिंगन करना किसी भी महापुरुष की मृत्यु का अद्वितीय दृश्य है। यह अद्भुत दृश्य था जो दर्शा रहा था–जो मरना जानता है वही जीना जानता है। कबीर के शब्दों में ज्यों की त्यों धर दीनी चादरिया। स्वामीजी जी की

मृत्यु अपने आप में एक संदेश है जो यह सिखाती है कि मृत्यु भय नहीं बल्कि निडरता सिखाती है। और यह भी कि, अंत समय में परमात्मा से कोई शिकवा–गिला न रहे। ऋषि का अंत समय ऐसा ही था जिससे एक नास्तिक महान् आस्तिक बन जाता है। इससे विश्व मानवता को प्रेरणा मिलती है–मानवता और ज्ञान–विज्ञान की रक्षा में प्राण भी चले जाएं तो कोई गम नहीं, बल्कि गर्व की बात होती है। इस लिए ऋषिवर की मृत्यु पर भी हमें गर्व है।

स्मारक– एक संक्षिप्त परिचय

जिस स्थान पर स्वामीजी ने प्राण त्यागे वह स्थान भिनायकोठी के नाम से जाना जाता है। जिसके एक भाग में निर्वाण–स्थल न्यास है। यह ऐतिहासिक स्थल आज आर्य समाज के पास है। वर्षों पूर्व आर्यसमाज नलाबाजार ने आर्यजगत् से धन एकत्र कर यह भूभाग खरीदा था। हम कृतज्ञ हैं नलाबाजार आर्यसमाज के प्रधान वैद्य मोहन लाल जी का जिनके नेतृत्व में महाशय दीपचंद जी बेलाणी, चंचलदास जी, दयालदास जी, प. रामस्वरूप जी रक्षक व अन्य आर्यों ने मिलकर इस ऐतिहासिक स्थल को बचा लिया। और आभार है उन सभी आर्य जनों का जिन्होंने भूभाग को खरीदने में आर्थिक सहयोग किया। नलाबाजार आर्यसमाज की पहल से ही ऋषि का निर्वाणस्थल आज आर्यसमाज से जुड़े लोगों के पास है।

एक बार आर्यजगत् के महान् संन्यासी स्वामी सर्वानन्द महाराज निर्वाण–स्थल आए। उन्होंने महर्षि के महाप्रयाण स्थल को देखा तो उन्हें अत्यन्त वेदना हुई। वे बोले –

''आज मैंने जगदगुरु महर्षि दयानन्द के निर्वाण कक्ष को देखा, आँखो में आँसू आ गये। यदि यह स्थान किसी अन्य मतावलम्बी के पास होता तो सोने से मढ़ दिया जाता। अभी यह एक सामान्य गृहस्थी के ड्रॉइंग रूम से भी बद्तर स्थिति में है। लगता है आर्यजनों का ध्यान इस ओर नहीं गया। हम सभी को मिलकर इस ऐतिहासिक स्थान को महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व के अनुरूप भव्य व गरिमामय रूप देना चाहिए।''

न्यास की स्थापना –

१६७५ के बसन्त पंचमी को महर्षि दयानन्द निर्वाण स्मारक न्यास की स्थापना सुप्रसिद्ध आर्यनेता प. प्रकाशवीर जी शास्त्री की अध्यक्षता में हुई थी। शास्त्री जी का सपना था, यह स्थान मानव निर्माण व विश्व संस्कृति अध्ययन संस्थान के रूप में विकसित हो। पर शास्त्री जी का आकस्मिक निधन हो गया और उनका स्वप्न स्वप्न ही रह गया। शास्त्रीजी के निधन के बाद आर्यजगत के सुप्रसिद्ध विद्वान महात्मा आर्यभिक्षु जी ने यह भार सम्भाला और न्यास के कार्यों का सफलता पूर्वक संचालन किया। महात्मा भिक्षु के निधन के बाद आर्य नेता कैप्टन देवरत्न जी आर्य ने इस भार को सम्भाला। लेकिन कैप्टन साहब के बीमार हो जाने के कारण यह कार्य अवरुद्ध हो गया। तब सभी न्यासियों ने एम डी एच के मालिक महाशय धर्मपाल जी से अध्यक्ष पद सम्भालने का निवेदन किया जिसे उन्होंने स्वीकृति प्रदान की। अब महाशय जी की अध्यक्षता में न्यास काम कर रहा है। न्यास की विभिन्न गतिविधियों में दैनिक यज्ञ, होम्योपेथी व एक्यूप्रेशर चिकित्सालय, वाचनालय, अतिथिशाला, महिला आर्यसमाज, वैदिक धर्म प्रचार आदि चल रही है।

आगामी योजनाओं में प्रमुख हैं– दयानन्द चित्रावली व sound light programme के साथ ही गुरुकुल, उपदेशक विद्यालय व योग कक्षा चलाना तथा ऋषि मंतव्यों को आगे बढ़ाना। हमारा प्रयास है कि आर्यजगत् के सहयोग से ऋषि महाप्रयाण स्थल प्रेरणा स्थल बने। यह अंतरराष्ट्रीय स्मारक बने, मानव कल्याण केंद्र बने। ऐसे अनेक कार्य जो देव दयानंद के उद्देश्यों को पूरा करने वाले हैं, करने हैं। इसके लिए आप सभी विद्वान, विचारक, श्रीमंत, लेखक व कार्यकर्ता सादर आमंत्रित हैं। आइए, ऋषि ऋण से उऋण होने के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपना योगदान इस स्मारक स्थल के लिए देने का संकल्प करें। स्वामी सर्वानंद जी की वेदना उनका ऋषि के प्रति प्रेम व श्रद्धा की वजह से है जिस पर प्रत्येक आर्य को मनन करना चाहिए और उनकी वेदना को अपनी वेदना समझना चाहिए। मेरा आग्रह है, आर्यों के इस प्रेरक स्मारक पर साल में एक बार अवश्य आना चाहिए– ऋषिवर के उद्देश्य को फलीभूत करने के लिए, विचार–विमर्श के लिए और संगठन की शक्ति को बढ़ाने के लिए। ***************************

– डॉ. गोपाल बाहेती, पूर्व विधायक कार्यकारी प्रधान, म. द. निर्वाण न्यास भिनायकोठी, अजमेर

उत्तम संस्कार मनुष्य को सच्च अर्थों में मानव बनाते हैं

– डॉ. प्रीति विमर्षिनी

मानव जीवन सुसंस्कार से बनता है और कुसंस्कार से बिगड़ता है। गर्भाधान से लेकर विवाह संस्कार मानव जीवन को सीधे प्रभावित करते हैं। इस लिए हमारे ऋषियों ने व्यवस्था दी कि सन्तान पैदा करने के पहले दम्पत्ति को जिस प्रकार की सन्तान चाहिए, उसके लिए तैयारी और संकल्प करना चाहिए। तैयारी में उत्तम और सन्तुलित ब्रह्मचर्य का सम्यक् पालन, आहार–विहार, व्यवहार, स्वाध्याय और ईश्वर प्रार्थना सम्मिलित है। गर्भाधान से लेकर सन्तान को गर्भ में आने तक की प्रक्रिया को संकल्प और जिम्मेदारी के साथ निभाना चाहिए। उत्तम सन्तान पैदा करना कोई खेल नहीं है। यह परमात्मा की महान् सृष्टि में अपना–अपना सर्वोत्तम अवदान देना है। जिन्होंने संस्कारों के महत्त्व को समझा उन्होंने अपना सारा ध्यान उत्तम सन्तान पैदा करने में लगाया। जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी सन्तानों ने जगत् में ऐसे अद्भुत और कल्याणकारी कार्य किए जिससे विश्व मानवता का कल्याण हुआ। बदलते जमाने के साथ चलने की दुहाई देने वाले संस्कारों की महत्ता को समझ नहीं पा रहे हैं। मोबाइल नामक यन्त्र के सम्मोहन में फँसी आज की पीढ़ी को सबसे अधिक मानवीय संस्कार देने की आवश्यकता है। साथ ही भारतीय परम्परा में प्रचलित उन सोलह वैदिक संस्कारों के महत्त्व और उपयोग को भी समझाना आवश्यक है जिससे सही अर्थों में मनुष्य मानव बनता है। सोचिए, उस दिन के बारे में जब पश्चिमी सभ्यता में पूर्णतः रंगे हुए लड़के–लड़कियों के ऊपर किसी प्रकार का अंकुश नहीं होगा और सभी कुसंस्कारों के कारण दिशाहीन हो भटक रहे होंगे? यह सब संस्कारहीनता के कारण होगा। इस लिए प्रत्येक व्यक्ति को विशेषकर तरुणों को संस्कार समझाने और उसे अमल में लाकर समाज की बेहतरी के लिए प्रेरित करने की जरूरत है। हम दृढ़ता के साथ कह सकते हैं, मानव निर्माण बिना उत्तम संस्कारों के हो ही नहीं सकता। यही बात लेख की लेखिका डॉ. प्रीति विमर्शिनी अपने लेख के माध्यम से कह रही हैं। लेख में क्या कह रही हैं यह तो लेख को गम्भीरता से पढ़ने के उपरान्त पता चलेगा। लेख पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा ही। – स.स.

प्रगति की दौड़ में, विकास की होड़ में तथा भौतिकता की अंधी चकाचौंध में हम अपनी उन प्राचीन धरोहरों एवं परम्पराओं को विस्मृत करते जा रहे हैं, अपने जीवन से तिरोहित करते जा रहे हैं जो भारतीयता के प्राण कहे जाते हैं, ये वैदिक संस्कृति की आधारशिला हैं। परिणाम हमारे सामने है। नैतिकता का ह्रास विघटित परिवार, विघटित समाज एवं भ्रष्टाचार का बढ़ता दायरा है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने अपने सूक्ष्म चिन्तन के द्वारा वैदिक शिक्षाओं पर आधारित मानव, समाज एवं राष्ट्र निर्माण की आधारशिला जिन सुदृढ़ भित्तियों पर रखी थी वे वैदिक संस्कृति में सोलह संस्कारों के नाम से जाने जाते हैं, जो इस प्रकार है– 1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. चूड़ाकर्म (मुण्डन), 9. कर्णवेध, 10. उपनयन (यज्ञोपवीत), 11. वेदारम्भ, 12. समावर्तन, 13. विवाह, 14. वानप्रस्थ, 15. संन्यास, 16 अन्त्येष्टि।वैदिक धर्म में प्रचलित सोलह संस्कारों का उद्देश्य सन्तान को सुसंस्कृत बनाना है। जैसे सुनार अशुद्ध सोने को अग्नि में तपाकर उसका संस्कार करता है उसे कुन्दन बनाता है उसी प्रकार संस्कारों की भट्टी में तपाकर जीवात्मा के पूर्व जन्मों के कुसंस्कारों को धोकर मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाना है। इसकी प्रक्रिया जीवनभर चलती रहती है। विभिन्न आयु और आश्रमों में किए जाने वाले ये संस्कार शरीर, मन, बुद्धि, प्राण, चेतना, हृदय और आत्मा पर सीधे प्रभाव डालते हैं। उपरोक्त तीन संस्कारों में प्रारम्भ के तीन संस्कार एक ही श्रेणी के हैं। आज का भौतिकवादी जगत् जिसे केवल विषय तृप्ति का साधन समझता है हमारी वैदिक संस्कृति में शुद्ध पवित्र नवीन आत्मा के आवाहन की प्रक्रिया, एक पवित्र श्रेष्ठ यज्ञ के रूप में की जाती थी जिसका संस्कार की श्रेणी में सर्वप्रथम स्थान है। उसके बाद दूसरे या तीसरे

माह में पुंसवन संस्कार के द्वारा बालक के शारीरिक विकास के लिये माता को सावधान करने के उद्देश्य से किया जाता है वहीं गर्भस्थ बालक के मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिये चौथे या छठे महीने में सीमन्तोन्नयन संस्कार का विधान है। क्योंकि सीमान्त कहते बाल को। मस्तिष्क को उन्नयन = उन्नति विकास अर्थात् मस्तिष्क का विकास इस संस्कार का उद्देश्य है। यह वह समय है जब गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क का निर्माण होने लगता है। मानव निर्माण में माता की भूमिका एक साँचे के समान है जिसमें माता–पिता जैसी सन्तान चाहें वैसी प्राप्त कर सकते हैं। अतः जन्म से पूर्व इन तीन संस्कारों का सन्तान के समुचित विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। शेष 12 संस्कार जन्म के बाद तथा एक मृत्यु के पश्चात् किया जाता है। जिसमें प्रथम जातकर्म संस्कार– बालक के उत्पन्न होने पर यह संस्कार किया जाता है जिसमें पिता स्वर्ण की शलाका को घृत मिश्रित मधु में डुबोकर सद्यःजात बालक की जिह्वा पर **ओम्** लिख कर तथा बालक के कान में– **वेदोऽसि** तू ज्ञानवान् है तुझे ज्ञानी बनना है। कह कर बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। स्वस्थ एवं दीर्घ आयु की प्रार्थना करता है। जातकर्म संस्कार के पश्चात् 11वें अथवा 101वें दिन बालक का नामकरण संस्कार होता है जिसमें माता–पिता की सम्पूर्ण महत्त्वाकांक्षाओं को भावनाओं को संक्षेप में अभिव्यक्त करने वाला बालक के जीवन के उद्देश्य तथा लक्ष्य का बोध कराने वाला कर्णप्रिय सुमधुर लघुतम शब्द से बालक को पुकारने के लिये, उसकी पहचान देने के लिये, बालक का द्व्यक्षर या चतुरक्षर तथा बालिका का तीन अक्षरों का एक ऐसा नाम दिया जाता है जिससे जब–जब उसे पुकारा जाये तब–तब बालक को नाम के अनुसार बनने की प्रेरणा उसके अन्तर्मन में उत्पन्न हो। नाम चयन की इस प्रक्रिया को नामकरण संस्कार का रूप दिया गया है। छठा संस्कार निष्क्रमण है जो कि = **जननात् यः तृतीयः ज्यौत्स्नः तस्य तृतीयायाम्** अथवा चतुर्थे **मासि निष्क्रमणिका** अर्थात् जन्म के बाद तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया अथवा चतुर्थ में सौरशक्ति से अनुभाषित प्राण–वायु को सुव्यवस्थित करने के उद्देष्य से, बालक को कृत्रिम जीवन से निकाल प्रकृति प्रदत्त स्वाभाविक स्वस्थ जीवन प्राप्त करने हेतु किया जाता है। संस्कारों के क्रम में सातवाँ– षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् छठे मास में अन्न प्राशन संस्कार करें– जीवन में प्रथम बार अन्न का प्राशन = खाना दाँत निकलना प्रारम्भ होने पर सर्वप्रथम दधि मधु तथा घृत मिश्रित अन्न को खिलाकर बालक के स्वस्थ जीवन की प्रार्थना करना। चूड़ाकर्म (मुण्डन)– प्रथम या तृतीय वर्ष में सम्पन्न होने वाले इस संस्कार से प्रायः सभी भलीभाँति परिचित हैं जिसका उद्देश्य गर्भस्थ मलिन केशों को हटाकर बालक के स्वस्थ बौद्धिक विकास के लिये प्रयत्नशील होना है इसके अभाव में बालक के मस्तिष्क का समुचित विकास नहीं होता। ये संस्कार उपनयन एवं वेदारम्भ के नाम से प्रचलित हैं। ये संस्कार मानव निर्माण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन संस्कारों के पश्चात् ही बालक द्विज बनता है। जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते, इन संस्कारों की प्रत्येक विधियाँ क्रियाएँ वैज्ञानिक एवं दार्शनिक चिन्तन का बोध कराती हैं जिसका बालक के नव विकसित मस्तिष्क एवं मन पर गूढ़ एवं स्थायी प्रभाव होता है। ऋषिऋण, देव ऋण तथा पितृ ऋण से उऋण होने का स्मरण दिलाता हुआ तीन सूत्रों वाला यज्ञोपवीत (जनेऊ) जिसमें एक ब्रह्म गाँठ भी होती है बालक को निरन्तर ब्रह्म प्राप्ति की मार्ग की ओर अग्रसर होने की भी प्रेरणा देता है। तथा इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि इस वचन का 5 बार पाठ भी जीवन में असत्य मार्ग का त्याग कर सत्य मार्ग की ओर ही प्रवृत्त होने की शिक्षा देता है प्राचीन काल में यह संस्कार सभी के लिये अनिवार्य था जो इसे सम्पन्न नहीं कराता था उसे सावित्री पतित कहा जाता था। सम्प्रति यह संस्कार पारसी और मुसलमानों में भी प्रचलित है। इन संस्कारों के माध्यम से बालक ब्रह्मचारी ने विद्याध्ययन की दीक्षा ली और व्रत लिया। तथा विद्याध्ययन सम्पूर्ण होने के पश्चात् वह विद्या स्नातक, व्रत स्नातक बन जाता है जिसके पश्चात् बारहवाँ संस्कार करते हैं। आज इसी का ही परिवर्तित रूप दीक्षान्त समारोह है जिसमें समावर्त्तन संस्कार की शिक्षाओं का सर्वथा अभाव होता है हाँ जो गुरुकुलीय परमपराओं में दीक्षान्त होते हैं वहाँ कुछ–कुछ प्रतीक उपलब्ध होते है। वस्तुतः यह संस्कार अध्ययन काल की शिक्षाओं एवं आचरणों से अनुस्यूत होकर ही अपने आगामी जीवन में प्रवेश करने का है, जिस विद्या को ब्रह्मचारी ने गुरुमुख से ग्रहण किया उसका

प्रचार–प्रसार करते रहना सत्यं वद. धर्मं चर स्वाध्यायान् मा प्रमद। अर्थात् = सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो स्वाध्याय का परित्याग कभी न करना आदि सम्पूर्ण भावी जीवन के लिये उपदेश, संदेश, निर्देश एवं आदेश वात्सल्यपूर्ण शैली में देकर आचार्य अन्तेवासी को अपने गृह में वापस जाने को कहता था। इन संस्कारों के पश्चात् ही ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। ब्रह्मचर्च धारण करने के पश्चात् ही कन्या ब्रह्मचारी युवा पति से तथा बालक ब्रह्मचारिणी युवती कन्या से अपने गुणकर्म स्वभाव के अनुरूप परस्पर विवाह बन्धन में बँधकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे, जिसका शुभारम्भ विवाह संस्कार पूर्वक होता है। इसे ब्रह्मविवाह, वैदिक विवाह कहते हैं। गृहस्थ आश्रम का उद्देश्य भी अतिपवित्र भावनाओं से युक्त है जिसमें परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण निष्ठा एवं तत्परता से पालन करना होता है। राष्ट्र के लिये सद्गुणी, विद्वान्, चरित्रवान्, यशस्वी, परोपकारी, राष्ट्रभक्त सन्तान उत्पन्न करना है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी सबका पालन करना गृहस्थ का धर्म है। ये सभी शिक्षायें वैदिक विवाह संस्कार पद्धति में मधुपर्क, राष्ट्रभृत् यज्ञ, जया होम, अभ्यातन होम, लाजा होम, शिलारोहण, सप्तपदी आदि विधियों के माध्यम से नव वर–वधू को प्रदान की जाती हैं। जिससे आज का सुशिक्षित समाज भी प्रायः अनभिज्ञ ही है।
इसके पश्चात् –

गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।।

अर्थात् जब गृहस्थी अपने को वृद्धावस्था के लक्षणों से युक्त अनुभव करें तथा पुत्र के पुत्र हो जायें अर्थात् दादा–दादी बन जायें तो वन का आश्रय लें तथा परमात्म प्राप्ति की ओर अग्रसर हो ज्ञान, कर्म, उपासना में प्रवृत्त हों। अपने परिवार का मोह बन्धन त्याग कर सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार समझते हुए समाज, राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण की चिन्ता करे। इस उद्देश्य से वानप्रस्थ संस्कार अर्थात् वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने का विधान है। सुसंस्कारित मानव के जीवन यात्रा की अन्तिम कड़ी संन्यास–संस्कार है जिसमें वानप्रस्थी अपने को पूर्णतया प्राणिमात्र के लिये तथा परमेश्वर के लिये समर्पित कर देता है, इस संन्यास आश्रम में प्रवेश की दीक्षा लेना ही संन्यास संस्कार है। इस प्रकार प्राणिमात्र हिताय अपने जीवन को समर्पित कर जीवन के चरम लक्ष्य परब्रह्म की प्राप्ति की ओर अग्रसर मानव की इहलीला समाप्ति पर जो दाह कर्म किया जाता है उसे अन्त्येष्टि संस्कार कहते हैं। वैदिक संस्कृति में मरणोपरान्त की जाने वाली क्रिया को भी एक संस्कार का रूप दिया गया, क्योंकि जीवित रहते हुए मानव ने कोई बुरा कर्म नहीं किया, जिसने किसी को हानि नहीं पहुँचाई, अब इस शरीर के जलने से पर्यावरण दूषित होकर संस्कार की हानि न हो, तथा अगला जन्म भी श्रेष्ठ उत्तम प्राप्त हो। अतः अन्त्येष्टि संस्कार का विधान है। इस प्रकार इन संस्कारों से मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है, संस्कारों में निहित क्रियाओं से प्राप्त होने वाली उदात्त शिक्षाओं का मानव के जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ता है। जिनसे मानव दिव्य गुण सम्पन्न श्रेष्ठ मानव बनकर, समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी साबित होता है। इस लिए चरित्रवान्, ज्ञानवान, विज्ञानवान, धनवान, बलवान, विद्यावान और ऐश्वर्यवान(सदगुणों से पूर्ण) सन्तान और व्यक्ति समाज के अंग बनें, जरूरी है उन्हें सभी संस्कारों से दीक्षित करके पूर्ण मानव बना दें।

(लेखिका पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी की उपाचार्या हैं)

****

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे ।

जो सर्वोत्तम हो उसे ग्रहण करें, यह जीवन धन है

– ए. कुमार

बाग में बहुत बड़े क्षेत्र में अनगिनत तरह के फूल खिले हैं। आपके सामने यह चुनौती है कि उन फूलों में से ऐसा फूल चुनना है, जो सबमें मौलिक, नवीन और सर्वोत्तम हो। आप जिस भी फूल को देखते हैं वही फूल आप को आकर्षित करता है। हर फूल की महक भी अलग तरह की है और मदमस्त कर देने वाली है। ऐसे में मौलिक, नवीन और सर्वोत्तम का चुनाव असम्भव नहीं तो बहुत कठिन जरूर है। लेकिन फूल का चयन करना जरूरी है। आप को देखना यह है आप के लिए उपयोगी सबसे बेहतर फूल कौन हो सकता है।

आमतौर पर हम अपने परंपरागत विचारों, संस्कारों और मान्यताओं के कारण अपनी आदतों और स्वभाव को बदल नहीं पाते हैं। सूरज रोजाना उगता है, लेकिन वह सूरज पिछले दिन के सूरज से हर तरह से मौलिक, नवीन और सर्वोत्तम होता है। नई चमक, नया उत्साह और नयापन उसमें होता है। हर दिन सूरज अपने नयेपन के कारण ही जीव जगत् के लिए प्रेरक, प्राणदायक और उत्साह बढ़ाने वाला होता है। सूरज न किसी का अनुकरण करता है, न किसी की बराबरी करने की सोचता है और न किसी का पिछलग्गू ही बनता है। जो इन विशेषताओं से भरा सूरज बनने के लिए ठान लेता है, दुनिया उसके सामने सिर झुकाती है।

विचार करते हुए या फैसला लेने में कभी जब हताश, निराश हो चुकें हों, केवल किस्मत की कमाई खाने का आधार बचा हो, अपने पराए हो गए हों और अपना सोचा हुआ, अपना न बन पाता हो, तब नए सिरे से सोचना शुरु करिए और तब तक सोचते रहिए जब तक यह न लगे कि अभी तक जितना सोचा था उनमें से यह एकदम सर्वथा मौलिक, नवीन और सर्वोत्तम है। खुद को लगने लगे वाकई में हमारा यह एकदम नया विचार है, जो मौलिक, नवीन और सर्वोत्तम है। इससे देखे गए स्वप्न को नये पंख लगाए जा सकते हैं। इससे वह मुकाम हासिल किया जा सकता है जो हमें हासिल करना है।

परन्तु कौन बताएगा कि अभी तक जितना सोचा था, वह एकदम भिन्न और सबसे नया है। मान लीजिए, आपका एक नया विचार जो लगता है तो नया और मौलिक भी लेकिन उस पर आपको न तो यकीन है और न तो उसको लेकर कोई उत्साह ही है, ऐसे में आपके अंदर एक किस्म की हीनता की तरंग पैदा हो सकती है जो स्वयं के प्रति विश्वास को डगमगाने या तोड़ने का कार्य करती है। इस तरंग को पैदा न होने देना एक चुनौती है।

दरअसल, हमारे मन में नए, पुराने और भविष्य के विचारों का रेला लगातार चलता रहता है। उन विचारों की मौलिकता, नवीनता और उत्तमता को पहचान कर उन्हें कार्य रूप में परणित करना ही सबसे बड़ी चुनौती होती है। जो पहचान और मूर्तरूप देने में माहिर होता है, वह सफलता की ही ऊँचाइयाँ नहीं तय करता है, बल्कि समाज को मौलिक, नवीन और सर्वोत्तम का अवदान देने में सफल हो जाता है।

आमतौर पर आस्था के नाम पर अनगिनत देवी–देवताओं पर यकीन करने की हमारी आदत होती है। कुछ डर, कुछ संस्कार तो कुछ विचारों का असर। अब आपके सामने चुनौती है कि सभी तरह के देवी–देवताओं में से ऐसे देवी–देवता का चुनाव करना है जो सबमें मौलिक, चिर नवीन और सर्वोत्तम हो। ऐसे में जब सभी देवी–देवताओं के बारे में एक से बढ़ कर एक कथाएं प्रचलित हों, चुनाव करना बहुत कठिन होता है। यहाँ आस्था के साथ सर्वोत्तम और मौलिक को भी चुनने की चुनौती है। आप ने पहले से सुना है कि एक ईश्वरीय शक्ति है जो सभी शक्तियों से सर्वोपरि है, लेकिन उसका कोई रूप–रंग नहीं है। आप के संस्कार यह कहते हैं कि रूप–रंग से रहित किसी देवी–देवता का मानना बहुत कठिन है और आम आदमी के बूते से बाहर की बात है। जब सामने कोई तस्वीर या मूर्ति न हो तो आप किस पर ध्यान

लगाएँगे और आराध्य के रूप में कैसे चुनाव करेंगे? यहाँ पर आप को बहुत गहराई से सोचने की जरूरत है। आप आम आदमी के रूप में सोचते हैं या एकदम अलग तरह के विचारवान आदमी के रूप में? आप परंपरागत विचारों और मान्यताओं को मानकर किसी आराध्य पर अपनी आस्था दृढ़ करेंगे या परंपरागत मान्यताओं या आस्थाओं के संस्कार से ऊपर उठकर आस्था पर तर्कसंगत ढंग से विचार करेंगे?

आप की भी अपनी सत्ता है। अपनी सत्ता को ही सबसे ज्यादा तवज्जो देना ठीक है कि ऐसी सत्ता पर यकीन करना जिसपर आजतक द्वंद बना हुआ है। जो अपनी सत्ता को सबसे अधिक तवज्जो देता है, समय उसे सबसे अधिक मूल्यवान बना देता है। एक अखंड विचारों का प्रवाह आप को एक अखंड ज्ञान–शक्ति का स्वामी बना सकता है। और आप में यह विश्वास होना चाहिए कि मुझमें वह अखंड शक्ति मौजूद है जो किसी अदृश्य सत्ता में होनी चाहिए।

आमतौर पर एक लक्ष्य हासिल करने के बाद यह मान लेते हैं, बहुत कुछ पा लिया, अब बहुत ज्यादा हाथ–पैर चलाने की जरूरत नहीं है। यह भी परंपरागत सोच का परिणाम होता है। इसी तरह, हर क्षेत्र में अलग तरह से करने और सोचने के मामले में भी होता है। परंपरागत सोचने और करने के संस्कार इतने ज्यादा असरदायक होते हैं कि तर्क और वैज्ञानिकता को भी अहमियत देना छोड़ देते हैं। जिससे एक अलग तरह की सोच, कार्य और संकल्प सभी बाधित होते हैं। यह सर्वोत्तम हासिल करने और सर्वोत्तम सोचने के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है। इस तरह की बाधा ही न आए, इसके लिए जरूरी है, एक संकल्प के साथ आगे बढ़ने का कि हर विचार, कार्य और विषय को मौलिक, नवीन और उत्तम ढंग से समझने और आगे बढ़ने की आदत डाली जाए।

आस्था, विश्वास या मजहब के नाम पर किसी के सामने जो व्यक्ति सिर झुकाना सीख लेता है, दुनिया उसके सामने सिर नहीं झुकाती। और जो मौलिकता, नवीनता और सर्वोत्तम बनने की ठान लेता है, दुनिया उसके सामने सिर ही नहीं झुकाती बल्कि उसे उसका मार्गदर्शन करने के लिए भी कहती है। यानी पिछलग्गू नहीं, मार्गदर्शक बनने की भूमिका निभाने के लिए खुद को तैयार करना चाहिए। यही जिंदगी की सबसे अलग तरह की उपलब्धि हो सकती है। आप की उपलब्धियाँ ऐसी हों कि आप के पहले दूसरे लोग आप की उपलब्धियों पर गर्व करें और उनकी चर्चा भी करें।

आप के विचारों की मौलिकता, नवीनता और उत्तमता आप को हर क्षेत्र में नई पहचान, दृढ़ता, संकल्प, चिंतन और सफलता दिला सकती है। इस विचार से किसी भी क्षेत्र में जब आगे बढ़ते हैं तो कठिन सा कठिन लक्ष्य हासिल हो जाता है। लेकिन सफलता हासिल कर लेने से भी मौलिकता, नवीनता और उत्तमता के रास्ते पर आगे बढ़ते रहने का संकल्प कमजोर नहीं होना चाहिए।

अपनी शक्ति को एक जगह एकत्रित करने का अभ्यास कीजिए। जब लगने लगे कि मेरी शक्ति एक जगह इक्टठी हो गई है, तब उसे सार्थक दिशा और उद्देश्य को हासिल करने में सजगता के साथ लगा दीजिए। इससे हासिल की गई सफलता जिंदगी का काया कल्प कर सकती है। ध्यान रहे, उद्देश्य के प्रति सजगता और पवित्रता का होना जरूरी है। ******

परलोक – जिसमें सत्य विद्या करके परमेश्वर की प्राप्तिपूर्वक इस जन्म वा पुनर्जन्म और मोक्ष में परमसुख प्राप्त होना है, उसको **परलोक** कहते हैं।

अपरलोक – जो परलोक से उल्टा है जिसमें दु:खविशेष भोगना होता है, वह **अपरलोक** कहाता है।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

कथा क्रान्ति

डायन

मालती मिश्रा 'मयंती'✍

''ए मंगला दूर हट मेरे बच्चे से, कितनी बार कहा है हमारे बच्चों से दूर रहा कर समझ नहीं आता तुझे?'' कमला अपने पाँच वर्ष के बेटे को खींचकर अपने सीने से लगाते हुए बोली। ''बिस्कुट ही तो दे रही थी बच्चे को।'' वह सहमती हुई बोली।

''नहीं चाहिए तेरा बिस्किट, चल जा यहाँ से, बड़ी आई बिस्किट खिलाने वाली।'' कमला बच्चे को गोद में उठाकर वहाँ से चली गई। मंगला आँखों में आँसू लिए अपने घर की ओर चल दी। कमला की आवाज सुनकर कुछ औरतें अपने–अपने घरों से बाहर निकल आई थीं और मंगला को वहाँ देखते ही बाहर खेल रहे अपने–अपने बच्चों को खींचकर घरों में ले गईं। यह देखते ही मंगला भीतर ही भीतर मानों सौ–सौ मौत एक–एक बार में मरी हो। लोग उससे नफरत करते हैं, वह सह लेती है पर जब लोग उससे अपने बच्चे छिपाते हैं तो उसका सीना छलनी हो जाता है।

वह अपना आँचल दोनों हाथों से पकड़े हुए मुट्ठी भींचे अपना दर्द भीतर ही भीतर पीती और क्रोध से काँपती हुई अपने घर की ओर बढ़ी। उसे खुद को होश नहीं था कि उसके पैर जमीन पर पड़ रहे हैं या हवा में तैर रहे हैं। उसे तो बस कमला की आवाज अपने कानों में पिघलते शीशे की मानिंद महसूस हो रही थी।

इसी अवस्था में उसने अपने घर के दरवाजे को हल्के से धक्का दिया और दरवाजा चर्र की आवाज के साथ खुल गया।

गली के नुक्कड़ का वह आखिरी घर था, दो छोटे–छोटे कमरे और बरामदा, बरामदे के बाद छोटा सा आँगन और आँगन में नीम का एक पेड़ लेकिन उस आँगन में हमेशा वीरानी छाई रहती। उस घर में तो क्या घर के बाहर भी कोई आता–जाता नहीं था। घर में बस मंगला अकेली रहती थी। दरवाजे से भीतर आकर उसने जोर से दरवाजा दे मारा। अपमान से जलती हुई मंगला अपना सारा क्रोध अपने घर की बेजान वस्तुओं पर ही निकाल सकती थी, कोई प्राणी तो था नहीं उस घर में जिससे वह अपने मन की पीड़ा बता पाती। वह कभी बर्तन फेंकती तो कभी खाट को लात मारकर अपना भी पैर जख्मी कर लेती पर यह पीड़ा भी उसके भीतर के दर्द को कम न कर सकी तो उसने सामने पड़ी कुल्हाड़ी उठाई और नीम के पेड़ पर ताबड़तोड़ वार करने लगी। कभी जड़ में मारती तो कभी ऊपर कभी दाँयीं ओर से वार करती तो कभी बाँयीं ओर से, साथ ही बड़बड़ाती जाती, ''म..मैं अपशगुनी..मैं डायन..मैं..मैं मनहूस..मैं..बाँझ..थू.. है सब पर ..मैं..मैं..अपने बच्चे को खा गई..''

अभी वह न जाने कब तक ऐसे ही अपना क्रोध नीम के पेड़ पर उतारती रहती अगर जोर–जोर से दरवाजा थपथपाने की आवाज न आती।

''क..कौन है?'' वह विक्षिप्त सी बोली। इस समय उसे देखकर कोई भी यही कहता कि उसका दिमागी संतुलन बिगड़ चुका है। मैली कुचौली–सी सूती धोती, बिखरे हुए बाल और नीम पर क्रोध उतारने के प्रयास में पसीने से तर–ब–तर होती काया। इसी अवस्था में उसने कुल्हाड़ी एक ओर फेंकी और दरवाजा खोल दिया।

एक साथ कई पुरुष और महिला खड़े थे, मंगला डर गई, उसके चेहरे से क्रोध के भाव गायब हो गए और भय नजर आने लगा।

''क..क्या है?'' उसने दीनता से पूछा

''मेरा बेटा कहाँ है मंगला?'' उनमें से एक व्यक्ति बोला।

''तेरा बेटा मुझे क्या पता?'' वह अंजानी आशंका से सहम उठी।

''तुझे नहीं पता तो किसे पता होगा? दो घंटे पहले तेरे साथ ही तो देखा था मेरे बेटे ने स्कूल से आते हुए।'' साथ आई एक महिला बोली।

''जब तो वो कुत्ते से डर रहा था तो मैंने उसे हाथ पकड़कर उस गली से बाहर निकालकर छोड़ दिया था, अब मुझे नहीं पता कि वो कहाँ है।''

''देख मंगला बता दे मेरा बच्चा कहाँ है, मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ।'' कहते हुए बच्चे की माँ रो पड़ी।

''मैं...मैं नहीं जानती तेरा बच्चा कहाँ है।'' मंगला ने हाथ जोड़ते हुए कहा वह अंजाने भय से काँप उठी थी।

''अरे डायन से हमदर्दी की उम्मीद कर रही है दीपू की माँ, अब नहीं मिलने वाला तेरा बच्चा। इसने तो अपना बच्चा नहीं छोड़ा तो दूसरों के क्या छोड़ेगी, मारो इसे, हाथ–पैर टूटेंगे तभी बताएगी।'' उनमें से एक महिला बोली और फिर मंगला की चीखें वातावरण में गूँज उठीं।

वह बेहोश हो गई तो उसे मरा हुआ जान सभी वहाँ से चले गए।

न जाने कितनी देर तक बेहोश रहने के उपरांत जब उसे होश आया तो पूरा बदन पके हुए फोड़े की तरह दुख रहा था, आँखों के आगे अंधेरा छा रहा था। उसने कराहते हुए उठने की कोशिश की लेकिन फिर गिर पड़ी। पूरा शरीर नीला पड़ा हुआ था। जैसे–तैसे वह लड़खड़ाती हुई बरामदे में पहुँची और धीरे–धीरे खिसकते हुए कमरे में गई। हल्दी निकालकर तेल में गर्म करके खुद के चोट पर लगाती तो चीख पड़ती।

''नाशपीटों को जरा भी रहम नहीं आती, मैं डायन दिखाई पड़ती हूँ इन सबों को, हे भगवान! कौन से जन्म के किए की सजा दे रहा है।'' कहती हुई मंगला फफक–फफक कर रो पड़ी। रोते–रोते वहीं धरती पर लेट गई। यही वह घर है जहाँ वह ब्याह कर आई थी..सोचते हुए उसकी आँखों के सामने पाँच साल पहले की तस्वीरें घूमने लगीं...

मंगला दुल्हन बनकर आई थी इस घर में। तब कबीर और उसकी माँ कितना ध्यान रखते थे उसका, जरा सी छींक भी आ जाती तो माँ जी तुरंत काढ़ा बनाकर पिलाने लगतीं कि कहीं जुकाम न हो जाए। कबीर भी उसका बहुत ध्यान रखता था। उनका छोटा और सुखी परिवार था। सभी पास–पड़ोस वाले भी उनसे खुश रहते। लेकिन ये खुशियाँ अधिक समय तक न टिक सकीं। शादी के दो साल बाद भी मंगला के कोई संतान नहीं हुई तो उसकी सास निराश होने लगीं और वह जब–तब मंगला को ताने मारने लगीं, पर वह बेचारी कभी पलटकर जवाब नहीं देती थी।

एक दिन उनकी किसी जानकार ने अपने गुरु जी की महिमा का गुणगान करते हुए बताया कि वह असंभव को भी संभव बना देते हैं, इसलिए उन्हें अपने गुरु जी के पास जाने की सलाह दी।

फिर क्या था, कबीर की माँ ने गुरुजी की शरण में जाकर अपना दुखड़ा रोया और गुरु जी ने उन्हें जो उपाय बताया, वह रोज करने लगीं। रोज सुबह–शाम मंगला से अपने घर के आँगन में नीम के पेड़ के नीचे पूजा करवातीं, कभी–कभी नींबू, मिर्च, राई, हल्दी और कलावा आदि चौराहे पर रखवातीं। आस–पड़ोस के लोगों ने कई बार मंगला को ये सब करते देखा तो उसे टोटके करने वाली समझने लगे और उससे कटे–कटे से रहने लगे। औरतों ने उसके घर जाना बंद कर दिया और उसकी सास से बाहर से ही दुआ–सलाम कर लेतीं लेकिन मंगला को देखकर मुँह फेर लेतीं।

कुछ महीने बाद मंगला गर्भवती हुई तो उसकी सास ने इसे गुरु जी की कृपा माना और जाकर उनके चरणों में नतमस्तक हो गईं।

मंगला ने एक बच्ची को जन्म दिया। कबीर और मंगला तो बहुत खुश थे लेकिन उसकी सास को पोते की आस थी, इसलिए वह फिर उन्हीं गुरु जी की शरण में गईं।

''तेरी बहू तो बाँझ थी दयावती, उसकी किस्मत में माँ बनना तो था ही नहीं लेकिन मेरी आराधना से उसकी किस्मत में एक बच्चे का सुख आया है। मैं भी इंसान हूँ दयावती, मेरी भी कुछ सीमाएँ हैं।''

''लेकिन गुरु जी बेटी हुई है, इससे हमारा वंश तो फिर भी नहीं बढ़ेगा। आप ही का सहारा है, कुछ कीजिए।'' दयावती ने गुरुजी के पैरों में अपना माथा टिका दिया।

''ठीक है दयावती, मैं कोशिश तो करूँगा लेकिन मेरी एक बात सुन ले! तेरी बहू को एक ही बच्चे का मातृत्व सुख मिलेगा, दो संतानों का सुख उसे नहीं मिल सकता, इसलिए तुझे उसकी बेटी को हमारे आश्रम में प्रभु के चरणों में सौंपना होगा उसके बाद ही उसकी गोद दुबारा भरेगी।''

''ठीक है गुरुजी, मैं ऐसा ही करूँगी, मैं लाऊँगी उसकी बेटी को।'' कहते हुए कबीर की माँ वापस आ गई थीं। आँगन में मंगला अपनी बच्ची की मालिश करते हुए गुनगुना रही थी।

''इतना लाड़ मत लगा बहू कि इससे अलग होना मुश्किल हो जाए।'' दयावती दरवाजे से अंदर आती हुई बोलीं।

''कैसी बात कर रही हो माँ, मैं अलग क्यों हूँगी इससे?'' मंगला बच्ची को उठाकर सीने से लगाती हुई बोली।

''अलग तो होना ही पड़ेगा बहू क्योंकि तेरे भाग्य में एक ही संतान का सुख है और वो संतान मेरा पोता होगा, जिससे हमारा वंश आगे बढ़ेगा।'' दयावती की आँखों में न जाने कैसी चमक थी जिससे मंगला दिल ही दिल में सिहर उठी।

वह बिना कुछ बोले बच्ची को गोद में लेकर भीतर जाने लगी। तो दयावती फिर बोल पड़ीं, ''बस आज कर ले जितना लाड़–प्यार करना है कल से मेरे पोते के लिए यज्ञ कर यज्ञ।'' कहती हुई आँगन में बिछे खाट पर बैठकर माला निकालकर जाप करने लगीं।

रात को उसने कबीर को माँ की कही सब बात बताई तो उसने ''कोई बात नहीं, कहने दो माँ को'' कहकर उसे ढाढस बँधाया और सो गया। मगर मंगला को नींद नहीं आ रही थी, रह–रहकर दयावती की बातें उसके दिमाग में गूंजतीं, वह सोच–सोच कर परेशान हो रही थी कि आखिर माँ जी ऐसा क्यों कह रही हैं, आज की रात ऐसा क्या होने वाला है, पर उसे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। दूर कहीं से बारह बजे का घड़ियाल बजा तो वह सोने की कोशिश करने लगी।

बाहर कहीं से कुत्ते के भौंकने की आवाज सुनकर मंगला की नींद खुली तो उसके बगल में उसकी बेटी नहीं थी, वह हड़बड़ाकर उठ बैठी और गुड़िया... गुड़िया... पुकारती हुई बाहर की ओर भागी।
उसने देखा दरवाजे पर दयावती उसकी बेटी को किसी पुरुष को दे रही थीं।

''माँ जी मेरी बच्ची को मुझे दीजिए..!'' चीखती हुई वह बाहर की ओर भागी पर दयावती ने उसे रोक लिया।

वह गिड़गिड़ाने लगी कि उसे जाने दें वह अपनी बच्ची के बिना नहीं रह पाएगी पर दयावती को उसकी ममता पर जरा भी दया नहीं आई। माँ जी मैं अपनी बच्ची को नहीं जाने दूँगी, हटिए मेरे रास्ते से कहकर उसने दयावती को एक ओर धक्का दे दिया और बाहर को भागी। इधर दयावती का सिर एक ईंट में लगा और खून की धार बह निकली। शोर सुनकर कबीर और पड़ोस के कौशिक जी और उनकी पत्नी भी आ गए। खून देखकर कबीर घबरा गया।

दयावती ने सबको कहा कि मंगला अपनी बेटी की बलि देने गई है और रोकने पर उसे धक्का दे दिया।

देखते ही देखते दयावती ने कबीर की गोद में सिर रखे दम तोड़ दिया, लेकिन जाते–जाते भी वह मंगला के जीवन में जहरीले काँटे बिछा गईं।

मंगला पागलों की भाँति जगह–जगह अपनी बच्ची को ढूँढ़ती रही पर वह नहीं मिली। थक हारकर दिन के दूसरे पहर वह घर लौटी तो घर के बाहर भीड़ देखकर किसी अनहोनी की आशंका से सिहर उठी।

उसे देखते ही पड़ोस की औरतें उसे सास की हत्यारन, अपनी ही बच्ची को खाने वाली और न जाने किन–किन उपाधियों से नवाजने लगीं। अति तो तब हुई थी जब उनमें से एक औरत बोली, ''अरे डायन भी सात घर छोड़कर वार करती है, पर इसने तो अपनी औलाद भी नहीं छोड़ी। एक ही साथ सास और बेटी, दोनों को सुला दिया। ऐसे ही न जाने कितने जहरीले वचनों को सुनती हुई वह आँगन में आई तो देखा कि दयावती के शव के पास बैठा कबीर रो रहा था। उसके पैरों में जैसे जान ही नहीं रही, वह लड़खड़ाकर वहीं धम्म से बैठ गई।

दयावती के अंतिम संस्कार को गया कबीर फिर घर वापस नहीं आया। मंगला काफी दिनों तक बौराई हुई सी अपनी बच्ची को ढूँढ़ती रही पर न तो बच्ची मिली न ही कबीर। तब से ही वह विक्षिप्त सी अपनी बच्ची के गम को सीने से लगाए जी रही है।

तभी दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ी, वह सहम गई, शरीर पर लगे घावों के दर्द को दाँत भींचकर कर सहन करती हुई बैठ गई। दरवाजे पर फिर से खटखटाने की आवाज आई पर डर के मारे उसने मुँह से आवाज नहीं निकाली और घुटनों को सीने से लगाए दोनों हाथों से घेरकर दोनों पैरों को जोर से पकड़े बैठी थर–थर काँप रही थी। उसे आज अपनी मौत साक्षात् दिखाई दे रही थी। तभी किसी महिला के बोलने की आवाज आई, ''कहीं मर तो नहीं गई?''

''चुपकर ऐसी अशुभ बातें न बोल।'' साथ आए पुरुष की आवाज आई।

''अगर मर गई तो इसकी हत्या का पाप हमारे सिर आएगा दीपू के बापू। हमारा बच्चा तो मिल गया, इसने तो उसे बचाया ही था पर हम ही नहीं माने।'' महिला लगभग रो ही पड़ी।

मंगला को उनकी बातें सुनकर थोड़ी हिम्मत आई और वह उठने की कोशिश में कराह उठी।

''वो जिन्दा है।'' कहते हुए दोनों उसकी ओर बढ़े।

****

जन्नत

– डॉ. राकेश चक्र

वे बहुत ईमानदार और नेक इंसान थे। नाम था अल्लादीन, लेकिन प्यार में उन्हें बड़ी हैद कहते। सदा ही दूसरों का उपकार करने की सोचते, लेकिन अपनी बिरादरी के कुछ बुरे लोगों से उनकी बिल्कुल न पटती। उसका कारण था कि वे रमजान में कभी रोजा न रखते तथा गैर मुस्लिम बिरादरी के लोगों से उनकी घनिष्ठ मित्रता रहती। वैसे वे रमजान के दिनों में भी अन्य दिनों की भांति जरूरतमंदों को दान आदि कर खूब मदद करते।साथ ही कुरानशरीफ का पाठ भी जरूर करते। लेकिन खास बात ये ही थी कि वे जो भी करते ईश्वर को साझी मानकर सब दिल से करते।

उनकी अहीर बिरादरी के नेक लोगों से अच्छी मित्रता थी। खूब आना जाना और उठना बैठना था। बिरादरी के लोग उन पर खूब तानाकशी करते कि अमुक तो बहुत अनोखा आदमी है कि रमजान में भी रोजा नहीं रखता, इसे तो दोजख में भी जगह न मिलेगी––––––––––––––।

वे बुराई और तानाकशी करने वालों को एक ही जवाब देते कि जब मैं कोई पाप ही नहीं करता तो पूरे दिन फाका क्यों मरूँ–––अल्लाह कभी नहीं कहता कि पूरे दिन फाका मरो और खूब पाप करो––बिना नहाए धोए रात को दो–तीन बजे बिना भूख के खाओ ––सोने वालों को लाउडस्पीकर लगाकर जगाओ और चिल्लाओ––फिर खा–पीकर सो जाओ––सब कुछ उल्टा –पुल्टा––कुदरत के विपरीत।

बिरादरी के लोग यह सुनकर और भी चिढ़ जाते, ये तो हमारे मजहब का दुश्मन है और न जाने क्या –क्या कहते। लेकिन वे कभी किसी पर कोई गुस्सा–बुस्सा न करते। हमेशा सहज सरल ही बने रहते।

धीरे –धीरे उम्र पिच्यासी वर्ष की हो गई थी। लेकिन वे पूरी तरह चुस्त –दुरुस्त–तंदुरुस्त थे। प्रातः उठकर जँगल जाना ,अपनी खेती–क्यारी का कामकाज देखना।पंछियों को दाना पानी खिलाना उनकी दिनचर्या में शामिल था।

रमजान का पवित्र माह आनेवाला था।बिरादरी के कुछ लोगों ने कहा कि मियां अब बूढ़े हो गए हो ,अबकी बार रमजान में रोजे जरूर रखना, तुम्हें जन्नत कैसे मिलेगी।उन्होंने कहा कि मुझे जन्नत ही मिलेगी, लेकिन सुन लो जिस दिन मैंने रोजा रख लिया उसी दिन में अल्लाहताला को प्यारा हो जाऊंगा। लोगों ने कहा कि बड़ा आया अल्लाह का प्यारा––––––।

रमजान का पहला रोजा था। अबकी बार बड़ी हैद ने जीवन में पहली बार रोजा रखा। अच्छे से खा–पीकर रोजा खुला। नमाज पढ़ी। अपने बेटा रहमत अली से कहा कि मेरे लिए हुक्का भर कर लाओ।

बेटा हुक्का भर कर लाया। तभी देखा कि पिता खाट पर आराम से सो रहे थे। कोई हलचल नहीं थी। वो जोर से चिल्लाया, ''अब्बा तो हमें छोड़कर चले गए––––––''

परिजन और पूरा गांव ही शोक में सन्तप्त हो गया। सबकी जुबान पर एक ही शब्द था ''बड़ी हैद सच्चे इंसान थे – अल्लाह ने जन्नत दे दी।''

****

चरित्र : व्यक्ति, परिवार और समाज का असली धन

– प्रज्ञा पिपासु

चरित्र की पहचान बहुत बड़े–बड़े कार्यों से नहीं अपितु बहुत छोटे–छोटे कार्यों, छोटी–छोटी बातों और एक छोटे से व्यवहार से भी हो सकती है। संयम और विचारों की दृढ़ता से व्यक्ति के चरित्रबल का अनुमान लगाया जा सकता है। यह एक ऐसी सुगंध है जिससे जीवन की बगिया महक उठती है। कहने का मतलब यह है कि यदि चरित्र रूपी सुगंध जीवन रूपी बगिया से गायब हो गई तो उस बगिया का कोई महत्त्व नहीं रह जाएगा। यहाँ तक की भौंरे भी उस ओर रुख नहीं करेंगे।

चरित्र ऐसी ज्योति है जिसके अलौकिक प्रकाश से आत्मा की ज्योति को अखंडता और अमरता प्राप्त होती है। इसी से जीवन–ज्योति जलती है। ऊपरी शरीर पर रंग–रोगन लगाना तो सौन्दर्य सज्जा संवारने वाले का कार्य है। अन्दर जब चरित्र रूपी रंग–रोगन लगाया जाता है तो ऊपरी (बनावटी) रंग का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। अन्दर का वह प्रकाश चरित्र का है जिसके आकर्षण से लोग खुद–ब–खुद खिंचते चले आते हैं। चरित्र आत्मा का ऐसा चुम्बक है जो बहुत दूर से ही खींच लेता है। यह चुम्बक दरिद्र से दरिद्र व्यक्ति में हो सकता है और रोगी से रोगी व्यक्ति में भी। लिंग–भेद भी इसमें नहीं होता। चरित्र की पूंजी जिसके पास है, वह चाहे निर्धन हो या रोगी, दुनिया का सबसे बड़ा पूंजीपति बन जाता है। जिसके आगे चरित्रहीन धनी व्यक्ति भी नतमस्तक होता है। अब निर्णय आप को करना है कि चरित्रहीन धनवान बनना है कि त्यागी चरित्रवान पूंजीपति। चरित्र ऐसी पूंजी है जो सबको अपनी ओर नमन् कराने की क्षमता रखती है। इस पूंजी को कमाने के लिए न तो किसी के शोषण की आवश्यकता पड़ती है और न तो व्यापार, नौकरी, खेती या मजदूरी करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए संवेदना, सद्‌गुण और स्वधर्म का सम्यक् पालन करना होता है। चरित्रधन का जो सेठ है उसे अपनी पूंजी को सुरक्षित करने के लिए किसी बैंक में न जमा करने की आवश्यकता है, न तो उसे चोरों से बचाने के लिए रात भर जागरण करने की ज़रूरत है, न तो आयकर विभाग की नज़रों से बचाने के लिए किसी विदेशी बैंक में या बीमा में सुरक्षित करने की ज़रूरत है। यह आत्मा रूपी तिजोरी में रखकर चैन से आराम किया जा सकता है। इस पूंजी का पूंजीपति किसी से नहीं घबराता, बल्कि इससे ही सभी घबराते हैं।

आज समाज में अनगिनत समस्याएँ हैं। इन समस्याओं का जन्मदाता वह मानव ही है जो तथाकथित विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का मनमाना दोहन कर रहा है। इस दोहन में होड़ लगी है कि कौन कितना अधिक दोहन करके आगे निकल जाता है। इसी अकूत दोहन की वजह से पर्यावरण, आर्थिक विषमता, हिंसा, आतंक, शोषण, जुल्म, कुपोषण, बीमारियाँ, आत्महत्या, मानसिक और शारीरिक विद्रूपताएँ जैसी अनेक अत्यंत जटिल समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। आर्थिक पूंजी दो प्रतिशत लोगों के पास इक्ट्‌ठा हो गई हैं बाकी 98 प्रतिशत लोग लगातार ग़रीबी की ओर बढ़ रहे हैं। वहीं पर चरित्र के पूंजीपतियों की संख्या लगातार कम होती जा रही है। चरित्र की पूंजी के क्षय के कारण समाज, संस्कृति, शिक्षा, मानवता, कला, साहित्य, विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, समाज विज्ञान, मानव धर्म, अध्यात्म और जीवन विज्ञान का भी बहुत तेजी के साथ क्षय हो रहा है। सामान्य रूप से यह बताया, पढ़ाया और दिखाया जाता है कि विश्व प्रत्येक क्षेत्र में बहुत तेज़ी के साथ प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रहा है, लेकिन यह नहीं बताया या पढ़ाया जाता कि मानव पिछले पाँच सौ वर्षों में चरित्र के मामले में कितना नीचे गिरा है और मानवता की हालात आज क्या है। मानव चरित्र धन से पूरी तरह से निर्धन या दरिद्र होता जा रहा है। जबकि

मानव की संस्कृति और सभ्यता का यह (चरित्र) आधार है।

विज्ञान के नित नये आविष्कारों ने मानव को अनगिनत क्षेत्रों में आगे बढ़ने के अवसर प्रदान किये हैं। हम घर बैठे मजे से सारी दुनिया के समाचार, मनोरंजन, साहित्य, विज्ञान, कला, इतिहास, धर्म और गणित सहित सभी प्रकार के विषयों को देख–सुन लेते हैं। देखने में यह आ रहा है कि सारा विश्व एक गाँव में तबदील हो गया है। सभ्यता की दौड़ में मानव कितना आगे निकल गया है। अब मानव को कंदराओं में रहने की ज़रूरत नहीं है। उसके पास आलीशान महल, टावर और अपार्टमेंट हैं। वह अब बैलगाड़ी नहीं अपितु वायुयान में बड़े आराम से कई दिनों का सफर कुछ घंटों में तय कर लेता है। उसे अब वल्कल या मृगछाला लपेटने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि बढ़िया से बढ़िया वस्त्र पहनकर सभ्य होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। उसे अब दुख और पीड़ा सहने की ज़रूरत नहीं है। सभी तरह की समस्याओं और जटिलताओं से बचाव खोज लिया गया है। इसके बावजूद वह इतना परेशान, समस्याग्रस्त, संकटग्रस्त, रोगग्रस्त और दुखी है कि शायद इससे पहले की सदियों में वह कभी न रहा हो। आज एक मानव को दूसरे मानव पर विश्वास नहीं रह गया है। इस प्रगति में सब कुछ प्राप्त करने के बावजूद भी वह स्वयं को सुखी अनुभव नहीं करता है। आखिर इसका कारण क्या है? अकूत धन–दौलत के होते हुए भी वह दुखी क्यों है? इस पर विचार करोगे तो बात समझ में आएगी कि मानव के अन्दर मानवता –जो मानव की सबसे बड़ी स्थाई पूंजी है, उससे वह ख़ाली हो गया है। नैतिकता और सद्गुणों की पूंजी से वह कंगाल हो गया है। वास्तविक और सार्थक उन्नति के क्षेत्र में आगे बढ़ना ही वह भूल गया है। मानव ने पिछले कुछ शताब्दियों में भौतिक उन्नति तो खूब की है लेकिन आत्मिक उन्नति में वह लगातार पिछड़ता गया।

महर्षि दयानंद के विरोधियों ने उनका चरित्र भ्रष्ट करने की मंशा से शहर की एक प्रसिद्ध वारांगना को उनके पास भेजा। पहले तो वह महर्षि के पास आने को तैयार नहीं हुई, लेकिन उसको जब बार–बार धन का प्रलोभन दिया गया तो वह आने के लिए तैयार हो गई। वह जैसे ही घर से चली उसके मन में सात्विकता के भाव आने लगे। वह सोचने लगी–महर्शि दयानंद जैसे महान् संत को हमें भ्रष्ट करके क्या मिलेगा.. वह तो बहुत पवित्रात्मा हैं। लेकिन दूसरी ओर प्रलोभन बार–बार उसे दयानंद को भ्रष्ट करने के लिए कह रहा था। आखिर में प्रलोभन जीत गया। वह दयानंद के पास पहुँचने ही वाली थी कि दूर से ही उन्हें (महर्षि को) देखकर काँप गई। महर्षि अपने कार्यों में व्यस्त थे। जैसे ही वह समीप पहुँची, महर्षि ने पूछा–''कैसे आना हुआ माँ! इतना सुनना था कि वारांगना के आँखों से टप–टप आँसू टपकने लगे। वह रोते हुई बोली–''अरे महान् महान् दयानंद, तुमने हमें माँ पुकारा है। जीवन में पहली बार किसी के मुँह से मैं 'माँ' शब्द सुन रही हूँ। मेरा अहो भाग्य है कि मुझ जैसी अधम वेश्या को किसी ने पहली बार 'माँ' कहकर मेरा सम्मान बढ़ाया है। दयानंद के चरित्र की इस उत्कृष्टता के सम्मुख उनके विरोधी सिर झुकाए बग़ले झाँकने लगे। यह होती है चरित्र की उत्कृष्टता। चरित्र की उच्चता ही है जिसके आगे बड़ा–सा–बड़ा धनवान और पदवान व्यक्ति सिर नीचे झुक लेता है।

बचपन में मिले संस्कारों का प्रभाव जीवनभर किसी न किसी रूप में असर डालता ही है। यदि अपनी संतानों को चरित्रवान, बलवान, सत्साहसी और संवेदना से युक्त बनाना है तो उन्हें ऐसा संस्कार देना चाहिए जिससे उनका सम्पूर्ण जीवन कुंदन बन जाए। निडरता, पवित्रता, करुणा, परोपकार, अहिंसा, प्रेम, सत्य, अहिंसा और मर्यादा का ऐसा पाठ जीवन के प्रारम्भिक बारह वर्षों तक पढ़ाते रहना चाहिए कि संतान का चारित्रिक अर्थात् आत्मिक उत्थान हो सके। आत्मा की उन्नति का नाम है चरित्र–शक्ति। उन्नत चरित्र, शक्तिशाली चरित्र और विचारवान चरित्र के व्यक्ति का सिर कभी पत्थर के सामने, शत्रु के सम्मुख और प्रलोभन में आकर नहीं झुक

सकता। सिर उनका हर जगह झुकता है जिनके चरित्र में बल नहीं है। किसी न किसी रूप में व्यक्ति कमजोर है। और उस कमजोरी को मज़बूती में बदलना जिस दिन आ जाएगा, उस दिन समझो तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ है। जिस दिन घृणा को प्रेम से, डर को निडरता से, असत्य को सत्य से, हिंसा को अहिंसा से, दीनता को दृढ़ता से, क्रोध को शांति से, शत्रुता को मित्रता से, स्वार्थ को परमार्थ से, अपकार को उपकार से, दुर्गुण को सद्गुण से जीतने का संकल्प ले लोगे और जीवन के समर–क्षेत्र में आगे बढ़कर अपनी आत्मिक–शक्ति को पहचान जाओगे, उस दिन समझो, जीवन में तुम्हें कोई परास्त नहीं कर सकता।

हम अपने परिवारी जनों के साथ, मित्रों के साथ, बंधुओं के साथ और समाज में अन्य लोगों के साथ आए दिन अपने निहित स्वार्थ के खातिर कभी–कभी अपने चरित्र को गिरवी रख देते हैं और सोचते हैं–मेरे जैसा बुद्धिमान कोई नहीं। थोड़े से लाभ के लिए अपनी आत्मा को गिरवी रखकर कितना बड़ा नुकसान किया, इस पर कभी सोचा है क्या? बचपन में मिले संस्कार और संगति का प्रभाव जीवन भर प्रभावी रहते हैं। इसलिए यह बताया जाता रहा है कि माता–पिता को अपनी संतान को ऐसा उत्तम संस्कार देना चाहिए जिससे वह एक श्रेष्ठ मानव बन सके। साथ ही उत्तम शिक्षा, उत्तम संगति और व्यवहार कुशलता पर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक है। आज शिक्षा का मतलब नौकरी करना समझा जाता है। इस कारण बालक को जब युवा बनकर समाज के प्रति जिम्मेदारी का दायित्व उठाने का समय आता है, तो वह समाज के प्रति न तो अपना दायित्व समझने की कोशिश करता है और न तो देश सेवा करने के लिए ही उसे अंदर से प्रेरणा होती है। आज इस लिए शिक्षा में बदलाव की बात कही जा रही है, लेकिन किन–किन स्तरों और दिशाओं में बदलाव होना चाहिए, इस पर कोई सम्यक विचार या सोच नहीं दिखाई देती है। यदि बदलाव हो भी रहे हैं तो गलत में।

जिस तेज़ी के साथ आज की पीढ़ी आगे बढ़ना चाहती है, वह कुछ मामले में तो ठीक दिखाई देती है, लेकिन अधिकांशतः वह भटकी हुई दृष्टिगोचर होती है। एक भरोसेमंद और सुंदर भवन बनाने के लिए उसमें लगने वाली सामग्री अच्छी और संतुलित होनी चाहिए, साथ ही भवन बनाने वाला राजमिस्त्री भी योग्य होना चाहिए। यदि इसमें से कोई एक चीज़ की भी कमी हुई तो भवन कमजोर और सुंदर कदापि नहीं बन सकता है। यही बात एक उत्तम मानव के रूप में भी होती है। कुम्हार जब बर्तन बनाता है तो वह सबसे पहले अच्छी और टिकाऊ मिट्टी की तलाश करता है। उसके बाद उस मिट्टी का संस्कार करके उसे संशोधित करता है। फिर, स्वच्छ जल के साथ उसे अच्छी तरह सानता है। फिर, जिस प्रकार का बर्तन बनाना चाहता है, बनाने के लिए चाक चलाता है। और बर्तन बनाने के लिए जब वह चाक पर तैयार मिट्टी रखता है, तो वह बहुत सावधानी पूर्वक बर्तन को संवारते हुए उसे बनाना प्रारम्भ करता है। इस समय उसकी दृष्टि बनने वाले बर्तन से एक पल के लिए भी नहीं हटती है। फिर गीले बर्तनों को सुखाकर उन्हें आवाँ में पकाता है। इस समय भी ध्यान रखता है कि बर्तन में ऐसी संतुलित आँच लगे जिससे सभी बर्तन ठीक तरह से पककर निकलें। बस ऐसा ही ध्यान संतान निर्माण का कार्य करते समय अर्थात् संस्कार देते समय रखना पड़ता है। जैसे भली प्रकार तैयार मिट्टी से आप चाहें जिस प्रकार के बर्तन, गमले, घड़े, हाड़ी या फूलदान बना सकते हैं, उसी प्रकार से श्रेष्ठ चरित्र के निर्माण के बाद आप बच्चे को जो भी बनाना चाहे वे बन जाएंगे, इसमें आपका सुंदर चरित्र दर्पण की तरह पारदर्शी दिखता रहेगा। चरित्र की उज्ज्वलता हर जगह जगमग–जगमग दिखाई पड़ती रहेगी। आज की पीढ़ी को यही आवश्यकता है कि वह एक चरित्रवान युवक–युवती बनें। इससे उनमें जहाँ एक दृढ़ विश्वास जागृत होगा वहीं पर दूसरे लोग भी उनपर विश्वास करेंगे। आज समाज में सबसे बड़ी कमी एक दूसरे पर विश्वास की है। इसलिए परिवार, समाज, देश और विश्व स्तर पर अविश्वास की बहुत बड़ी समस्या उठ खड़ी हुई है। विश्वास एक दूसरे

से कब ख़त्म होता है? विचार करने पर पता चलता है कि विश्वास का आधार उज्ज्वल चरित्र है। जब किसी चीज़ का आधार ही खिसक जाता है तो उस पर कोई भी वस्तु टिक नहीं सकती है। इसलिए विश्व समाज के सामने अविश्वास का संकट सबसे अधिक गहरा गया है। प्रत्येक व्यक्ति को इस संकट को समझना होगा। यदि इस संकट के प्रति मानव समाज का ध्यान नहीं गया तो मानव का आने वाला समय आधारहीन और अंधकार का होगा।

यह जगत् परिवर्तनशील है। हर क्षण यहाँ बदल रहा है। आज कल नहीं हो सकता। उसी प्रकार, कल आज नहीं हो सकता। ब्रह्मांड की प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होता रहता है। अब प्रश्न कर सकते हो कि फिर इस संसार में स्थिर रहने वाली कोई चीज है भी की नहीं? हाँ, स्थिर है। चरित्र रूपी निधि स्थिर है। हमारे पुरखों ने कहा है–यदि अपने चरित्र को संवारते रहो तो प्रतिष्ठा स्वयं संवर जाती है। चरित्र कल्पवृक्ष के समान है। सूर्य की तरह प्रकाशवान, गंगोत्री जैसा पवित्र, सागर जैसा अथाह, हिमालय जैसा उन्नत, नीलाम्बर जैसा विस्तृत, चंदन से भी अधिक सुरभित और चंद्रमा से भी अधिक शीतल है। इससे सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। यह काल की हवा से न सूखता है और परिवर्तन की अग्नि से यह कभी जलता नहीं।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को विचार करने की ज़रूरत है कि वह अपना जीवन परिवार, समाज, देश और विश्व को किस रूप में अर्पित करना चाहता है या केवल समाज एवं प्रकृति से लेने के लिए ही हमेशा तैयार रहना ही उसके जीवन का उद्देश्य है? यदि इस प्रश्न पर आप मौन हैं तो आपसे कुछ कहना बेकार है और यदि आपकी संवेदना समाज और प्रकृति के प्रति जागृत है तो अपने अवदान को अपनी योग्यता, प्रतिभा एवं रुचि के अनुसार देने का संकल्प कीजिए। यह आप के जीवन की सार्थकता का प्रथम चरण होगा।

यह प्रश्न भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना की आप अपने जीवन को महत्त्वपूर्ण समझते हैं। और यह प्रश्न चरित्र से सम्बंधित है। यह प्रश्न है– व्यक्ति की उन्नति और जीवन का आधार क्या है? उत्तर आएगा कि चरित्र की उत्तमता। भाव यह है कि यदि समाज के प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र उज्ज्वल बन जाए तो सारा समाज ही नहीं संसार भी स्वर्गधाम बन जाएगा। स्वर्ग कहीं दूसरे लोक पर नहीं है। स्वर्ग इसी भूमि पर है, लेकिन यह तब मूर्तरूप में दिखाई देता है, जब धरती के प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र उज्ज्वल और दृढ़ हो जाता है। दूसरे के चरित्र की ओर ताक–झाँक करने की अपेक्षा अपने चरित्र की ओर ताक–झाँक करो, और हर क्षण करो। इसकी तरफ ऐसी निगाह रखो जैसे अर्जुन अपने लक्ष्य–भेदन के समय चिड़िया की आँख पर प्रत्येक पल दृष्टि गड़ाए हुए थे। उनकी सफलता का रहस्य यही था। तुम्हारे जीवन की सफलता का रहस्य भी चरित्र पर प्रत्येक क्षण नज़र रखने में छिपा हुआ है।

अपनी मातृभूमि सबको प्यारी होती है। देशभक्त कभी अपने–पराए का भेद नहीं करते और न ही जात–पाँत, अस्पृश्यता और अंधविश्वास को ही बढ़ावा देते हैं। एक राष्ट्र की उन्नति उसकी अच्छी सड़कों, पुस्कालयों, कल कारखानों, व्यापारिक केंद्रों, विश्वविद्यालयों और संसाधनों की बहुलता पर निर्भर नहीं होती, अपितु वहाँ निवास करने वाले चरित्रवान लोगों पर निर्भर करती है। जिस राष्ट्र के बच्चे, तरुण और मार्गदर्शक बुजुर्गों का चरित्र ऊँचा नहीं होता, उस राष्ट्र और समाज का पतन हो जाता है। आज देश का सारा ध्यान अच्छी शिक्षा, सब को रोजगार उपलब्ध कराने वाली योजनाओं, उच्च व्यावसायिक क्षमता पैदा करने वाले संस्थानों और संसाधनों को बढ़ाने पर केंद्रित किया जा रहा है। प्रत्येक माता–पिता अपने संतानों को उच्च नौकरशाह, अभियंता, चिकित्सक, अधिवक्ता और प्रवक्ता बनाने के लिए सोचते हैं। लेकिन वह यह नहीं सोचते कि सब कुछ बनने के बाद भी यदि वह एक चरित्रवान मानव नहीं बन पाया तो क्या उसका जीवन सफल हो पाएगा? यदि चरित्र नहीं ठीक रहा तो वह देश–समाज का हर तरह से हानि ही पहुँचाएगा। वह भ्रष्टाचार, दुराचार, हरामख़ोरी, स्वार्थ,

पक्षपात और चालाकी उसकी ज़िंदगी का अहम हिस्सा बन जायेंगे। इसलिए सुसंस्कार, सुशिक्षा और सुसंगति उसके जीवन के प्रथम सोपान होने चाहिए। मातृभूमि की रक्षा और सेवा एक चरित्रवान सेनापति, डाक्टर, अभियंता, अधिवक्ता और प्रवक्ता ही कर सकते हैं। भाव यह है कि चरित्र के बिना किसी भी क्षेत्र का व्यक्ति अपना योगदान न तो बढ़िया तरीके से परिवार को दे सकता है, न समाज को और न ही देश को ही। चरित्र–धन का संग्रह करने के बाद सभी अन्य धनों की उपयोगिता बढ़ जाती है। यदि चरित्र–धन का संग्रह न किया तो अरबपति होने के बाद भी खाकपति ही रहोगे। उच्चशिक्षित होकर भी गंदगी से भरे रहोगे। चरित्र की निकृष्टता के कारण आज विश्व के बड़े–बड़े देश भी हिंसा, व्यभिचार, भ्रष्टाचार और अन्य अनेक समस्याओं से घिरे हुए हैं। महान् महाराणा प्रताप को अपने चरित्र की दृढ़ता पर इतना भरोसा था। उन्होंने बड़े से बड़े लालच को भी ठोकर मार दिया था। वन में घास की रोटी खाना पसंद किया, लेकिन विधर्मी की दासता को कभी स्वीकार नहीं किया। विश्व इतिहास में प्रसिद्ध चौदहवें लुई अपने मंत्री से कहा, 'मंत्रीजी! हम इतने बड़े धन–जन और बड़े देश पर शासन करते हैं, परंतु छोटे से देश नीदरलैंड को हराने में असमर्थ हैं?'' मंत्री ने कहा,''महाराज! किसी देश की महानता उस देश के विशाल जन–धन या लम्बाई–चौड़ाई पर अवलंबित नहीं होती है, अपितु वहाँ के निवासियों के चरित्र पर होती है।''

अधिक नहीं साठ वर्ष पहले और आज की मानसिकता में ज़मीन आसमान का अंतर आ गया है। जिन मूल्यों और सद्गुणों को जीवन का सार समझा जाता था आज उन्हें जीवन के लिए व्यर्थ और महत्त्वहीन समझा जाने लगा है। सफलता, अब ईमानदारी के स्थान पर बेईमानी और हरामख़ोरी में समझी जाने लगी है। मिलावट, ऊपरी लकदक, ठगी, धूर्तताई और बेईमानी का साम्राज्य प्रत्येक मन में इस कदर स्थापित हो गया है कि इन्हें ही जीवन का उपयोगी अंग माना जाने लगा है। जो लोग ईमानदार, चरित्रवान, सद्गुणी और परोपकारी स्वभाव के हैं उन्हें आज के ज़माने के अनुसार पिछड़ा, गँवार और बेवकूफ समझा जाने लगा है। यही कारण है कि नकारात्मक प्रवृतियाँ और नकारात्मक ऊर्जा हमारे जीवन, परिवार, समाज और देश में निरंतर बढ़ती जा रही है। लोगों को कौन समझाए कि सफलता झूठ, फ़रेब, ठगी, बेईमानी और स्वार्थ के मकड़जाल में फँसकर नहीं बल्कि उस सच्चाई, कर्तव्यनिष्ठा, सत्साहस, परिश्रम और पवित्रता के रास्ते पर चलकर प्राप्त करना निरापद होती है जिससे जीवन में शांति, सुचिता, प्रेम, आनंद और सत्य की वृद्धि होती है। अरे विद्यार्थियों, व्यापारियों, शिक्षकों, चिकित्सकों, लिपिकों, अधिवक्ताओं और श्रमिकों विचार करो–परिश्रम, कर्तव्यनिष्ठा, समय–बद्धता, पवित्रता और सच्चाई से कार्य करके आगे बढ़ने में कौन सी हानि हो जाएगी? मान लिया हानि भी हो जाएगी तो, वह हानि केवल धन की होगी या परिश्रम का पूरा फल ही नष्ट हो जाएगा? लेकिन यह सत्य समझो यह क्षणिक हानि, भविष्य के लिए, सबसे बड़ी जीत के रूप में आएगी। सब कुछ खो जाने के बाद भी यदि चरित्र या ईमान नहीं खोया, तो समझो यह सब से बड़ी जीत या लाभ है। क्योंकि यही एक मूल्य सब का घाटा पाट देता है। झूठ, फ़रेब, ठगी, बेईमानी और अनाचार से आदमी का सबसे अधिक नुकसान होता है। इससे मन में अशांति, ग्लानि, गुस्सा, नफ़रत और असंतोष जहाँ जीवन के अंग बन जाते हैं वहीं पर परिवार, समाज और अपने–परायों की नज़रों में भी गिर जाते हैं। सभी का उस व्यक्ति के चरित्र पर से भरोसा टूट जाता है। ऐसी स्थिति में धन कमा ही लिया, झूठी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लिया तो उससे क्या हासिल होने वाला है? क़ागज़ की नाव से आज तक कभी कोई नदी नहीं पार कर पाया है। मुखौटे और वास्तविक चेहरे में जो अंतर है वही अंतर झूठ और सच में है। यह निर्णय आपको करना है कि मुखौटे वाली जिंदगी जीना चाहते हो या वास्तविक चेहरे वाली सच्ची ज़िंदगी। असली ज़िंदगी में मुखौटे का कोई मूल्य नहीं होता है। और इस मूल्यवान जीवन में मूल्यों के साथ जीना सार्थक होगा कि बिना मूल्यों को अपनाए? इस पर

गम्भीरता से विचार करो। शांत मन से थोड़ी देर विचार करो, अंदर की आवाज़ सुनने की कोशिश करो, उत्तम जीवन जीने का रास्ता का पता चल जाएगा।

मानवता, नैतिकता और सहिष्णुता मानव जीवन के आधार हैं। जिस तरह से अग्नि से उसका ताप और जल से शीतलता हटा देने से उनका कोई महत्त्व या पहचान नहीं रह जाती है, उसी प्रकार से मानव की पहचान उसके मूल गुण मानवता, नैतिकता और सहिष्णुता में है। यदि मानव के अंदर ये गुण नहीं हैं तो वह मानव कहलाने का हक़दार नहीं है। मानवता सीधे व्यक्ति की संवेदना और चरित्र से जुड़ी हुई है। एक चरित्रवान व्यक्ति कभी अमानवीय नहीं हो सकता है। इसलिए कहा गया की चरित्र को संवारते रहिए बाक़ी सभी चीज़ें अपने आप संवर जाती हैं। शिव शंकर प्रसाद को अपनी सीमेंट फैक्ट्री को किसी कारणवश बंद करनी पड़ी। हजारों लोगों को इस फैक्ट्री में रोजगार मिला हुआ था। ऐसे में वहाँ के कर्मचारियों और श्रमिकों के सामने परिवार के भरण–पोषण का संकट आ खड़ा हुआ। लेकिन फ़ैक्ट्री मालिक प्रसाद ने सब को वेतन देते रहने का भरोसा दिलाया। यह सुनकर सभी लोग हैरान रह गये। प्रसाद की पत्नी बोली,–"अरे, इससे तो हम पर बहुत बड़ा बोझ आ जाएगा। यदि कर्मचारी काम पर नहीं हैं तो उन्हें वेतन देने का क्या औचित्य है?" प्रसाद बोले, "ईश्वर ने मुझे भोजन, कपड़ा और रहने का घर दिया हुआ है और हम आज भी बडे आराम से रह रहें हैं, तो इसमें सबसे बड़ा योगदान फ़ैक्ट्री के इन सहयोगियों का है जिन्होंने अपना पशीना बहाकर हमें पूंजीपति बनाया। जिन्होंने कमाकर हमें दिया है, उन्हें ऐसे आड़े वक्त में न दूँगा तो कब दूँगा? ईश्वर के दरबार में एक दिन खड़ा होना पड़ेगा, तब मैं क्या जवाब दूँगा?" फ़ैक्ट्री दो वर्ष बाद फिर चालू हो गई। श्रमिकों ने अपनी जान लगाकर उसे पुनः पटरी पर ला दिया। लेकिन फ़ैक्ट्री मालिक प्रसाद ने संकट के समय में दिये धन को वेतन में नहीं काटा। व्यक्ति का चरित्र यदि उज्ज्वल है और वह अपने जैसा दुख–सुख, हानि–लाभ और सुदिन–दुर्दिन को दूसरों में भी महसूस करता है तो वह निश्चित ही इस धरती का वह ईमानदार और सब से चरित्रवान प्राणी है। ऐसे व्यक्तियों से ही धरती पर स्वर्ग की कल्पना की जाती है। सुचरित्रता बच्चे, किशोर, जवान, पौढ़ और बूढ़े सभी के लिए अमृत है। जिसमें यह अमृत नहीं है, वह मानव होकर भी मात्र दो हाथ पैरों के जानवर के अतिरिक्त कुछ नहीं है। *********************************

---

www.ved-yog.com

(वेद योग चैरीटेबल ट्रस्ट द्वारा संचालित)

चारों वेद, महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य सहित, तथा वेदों का अंग्रेजी अनुवाद, महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण साहित्य, दर्शन, उपनिषद् तथा अन्य आर्ष ग्रन्थ वेबसाईट पर निःशुल्क उपलब्ध।